राजक[illegible] सुन्दरी

लेखिका
साध्वी मैना सुन्दरी

प्रकाशक :
सम्यग्ज्ञान प्रचारक मण्डल
बापू बाजार
जयपुर–302003

तृतीयावृत्ति–2000

मूल्य .
तीन रुपये

फाइनेन्स एव बिजली के कारोबार को सुसचालित करते हुए धार्मिक ए
सामाजिक कार्यों मे विशेष रुचि लेते हैं।

श्री कनकमलजी चोरडिया एव समस्त परिवार, आचार्य प्रव
श्री 1008 श्री हस्तीमलजी म. सा. के, अनन्य भक्तो मे से हैं। आपकी अनन्य
श्रद्धा अनुकरणीय है। आप प्रतिवर्ष एक लम्बे समय तक आचार्य प्रवर की
सेवा मे रहते हैं एवं सन्त सेवा, व्याख्यान श्रवण तथा स्वाध्याय का निरन्त
लाभ लेते हैं। विदुषी महासति श्री मैना सुन्दरीजी द्वारा लिखित 'पर्युषण
पर्वाराधना' का पुन प्रकाशन, स्वाध्यायी बन्धुओ के लिए एक महत्
आवश्यकता को देखते हुए, आपने इसके प्रकाशन का व्यय उठाकर समाज
और धर्म-शासन की महान सेवा की है।

विनीत

टीकमचन्द हीरावत

फाइनेन्स एवं बिजली के कारोबार को सुमचालित करते हुए धार्मिक व
सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि लेते हैं।

श्री कनकमलजी चोरडिया एवं समस्त परिवार, आचार्य प्रव
श्री 1008 श्री हस्तीमलजी म. सा. के, अनन्य भक्तों में से हैं। आपकी अनन्
श्रद्धा अनुकरणीय है। आप प्रतिवर्ष एक लम्बे समय तक आचार्य प्रवर की
सेवा में रहते हैं एवं सन्त सेवा, व्याख्यान श्रवण तथा स्वाध्याय का निरन्त
लाभ लेते हैं। विदुषी महासति श्री मैना सुन्दरीजी द्वारा लिखित 'पर्युषण
पर्वाराधना' का पुन प्रकाशन, स्वाध्यायी बन्धुओं के लिए एक महत्
आवश्यकता को देखते हुए, आपने इसके प्रकाशन का व्यय उठाकर समा
और धर्म-शासन की महान सेवा की है।

विनीत
टीकमचन्द हीरावत

मन भावन पावन पर्युषण पर्व आरम्भ हो चुके हैं। आज का प्रथम दिवस ज्ञान दिवस है। ज्ञान ही सच्चा प्रकाश है। सम्यक् ज्ञान के अभाव मे सब व्यर्थ है। तो आइए, इस पर्व की साधना मे आज हम ज्ञान के प्रकाश मे आलोकित हो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को समझ सुपथगामी बनें।

मन भावन पावन पर्युषण पर्व आरम्भ हो चुके हैं। आज का प्रथम दिवस ज्ञान दिवस है। ज्ञान ही सच्चा प्रकाश है। सम्यक् ज्ञान के अभाव में सब व्यर्थ है। तो आइए, इस पर्व की साधना मे आज हम ज्ञान के प्रकाश मे आलोकित हो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को समझ सुपथगामी बनें।

मन भावन पावन पर्युषण पर्व आरम्भ हो चुके है। आज का प्रथम दिवस ज्ञान दिवस है। ज्ञान ही सच्चा प्रकाश है। सम्यक् ज्ञान के अभाव में सब व्यर्थ है। तो आइए, इस पर्व की साधना से आज हम ज्ञान के प्रकाश में आलोकित हो कर्तव्य-अकर्त्तव्य को समझ सुपथगामी बने।

मन भावन पावन पर्युषण पर्व आरम्भ हो चुके है। आज का प्रथम दिवस ज्ञान दिवस है। ज्ञान ही सच्चा प्रकाश है। सम्यक् ज्ञान के अभाव में सब व्यर्थ है। तो आइए, इस पर्व की साधना मे आज हम ज्ञान के प्रकाश में आलोकित हो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को समझ सुपथगामी बने।

मन भावन पावन पर्युषण पर्व आरम्भ हो चुके है। आज का प्रथम दिवस ज्ञान दिवस है। ज्ञान ही सच्चा प्रकाश है। सम्यक् ज्ञान के अभाव मे सब व्यर्थ है। तो आइए, इस पर्व की साधना मे आज हम ज्ञान के प्रकाश में आलोकित हो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को समझ सुपथगामी बने ।

मन भावन पावन पर्युषण पर्व आरम्भ हो चुके है। आज का प्रथम दिवस ज्ञान दिवस है। ज्ञान ही सच्चा प्रकाश है। सम्यक् ज्ञान के अभाव मे सब व्यर्थ है। तो आइए, इस पर्व की साधना मे आज हम ज्ञान के प्रकाश में आलोकित हो कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को समझ सुपथगामी बने ।

किन्तु, संसाराभिमुखी प्राणी रवि और शशि को ही प्रकाश मानते हैं। प्रदीप और बिजली को भी अंधकार का नाशक कहते पर याद रखिए यह पुद्गल प्रकाश आपको कभी धोखा भी दे सक है; क्योंकि यह प्रकाश अस्थायी है, क्षण विध्वंसी है और है आप मिनटो में अंधकार के गहरे गर्त में गिराने वाला जबकि ज्ञान प्रकाश स्थिर है, अविनश्वर है और है अखड प्रकाश देने वाला। ज्ञा का दीपक कभी भी गुल नही हो सकता। अतः कहा जा सकता है इस ज्ञान के प्रकाश मे और पौद्गलिक चन्द्र-सूर्य के प्रकाश मे मह अन्तर है।

वह अन्तर क्या है ?

सहस्रो सूर्य हजारो चन्द्र और लाखो बल्बो तथा दीपकों प्रकाश भी नेत्र विहीन व्यक्ति के लिए व्यर्थ है। पर उसी व्यक्ति दिल दिमाग ज्ञान का उदय होते ही आलोक से जगमगा उठता है।

वास्तव में ज्ञान क्या क्या नही करता ? ज्ञान की महिमा किसी कवि ने बहुत सुन्दर भाव व्यक्त किए हैं—

ज्ञान अज्ञानान्धकार को दूर करता है, प्रकाश फैलाता है, शां प्रदान करता है, क्रोध-विनष्ट करता है, धर्म को विस्तृत करता और पाप को धुनता है। भला बतलाइए ज्ञान मनुष्यों का क्या-क्य कल्याण व इष्ट साधन नही करता ? अर्थात् सब कुछ करता है।[1]

इसीलिए तो कवियो ने ज्ञान की महानता का दिग्दर्शन कर हुए नानाविध उपमाओ से उसे उपमित किया है।

"ज्ञान सचमुच कल्पवृक्ष से भी बढकर अभीष्ट फल देने वा है, स्वर्ग लोक की कामधेनु से भी बढकर अमृत प्रदान करने वाला

१—तमो धुनीते कुरुते प्रकाश, शाम विधत्ते विनिहन्ति कोपम्।
तनोति धर्म विधुनोति पाप, ज्ञान न किं किं कुरुते नराणाम्॥

किन्तु, संसाराभिमुखी प्राणी रवि और शशि को ही प्रकाशपु मानते हैं। प्रदीप और बिजली को भी अंधकार का नाशक कहते पर याद रखिए यह पुद्गल प्रकाश आपको कभी धोखा भी दे सक है; क्योंकि यह प्रकाश अस्थायी है, क्षण विध्वंसी है और है आप मिनटों में अंधकार के गहरे गर्त में गिराने वाला जबकि ज्ञान प्रकाश स्थिर है, अविनश्वर है और है अखंड प्रकाश देने वाला। ज्ञ का दीपक कभी भी गुल नहीं हो सकता। अतः कहा जा सकता है इस ज्ञान के प्रकाश में और पौद्गलिक चन्द्र-सूर्य के प्रकाश में मह अन्तर है।

वह अन्तर क्या है?

सहस्रों सूर्य हजारों चन्द्र और लाखों वल्बों तथा दीपकों प्रकाश भी नेत्र विहीन व्यक्ति के लिए व्यर्थ है। पर उसी व्यक्ति दिल दिमाग ज्ञान का उदय होते ही आलोक से जगमगा उठता है

वास्तव में ज्ञान क्या क्या नहीं करता? ज्ञान की महिम किसी कवि ने बहुत सुन्दर भाव व्यक्त किए हैं—

ज्ञान अज्ञानान्धकार को दूर करता है, प्रकाश फैलाता है, शा प्रदान करता है, क्रोध-विनष्ट करता है, धर्म को विस्तृत करत और पाप को धुनता है। भला बतलाइए ज्ञान मनुष्यों का क्या-कल्याण व इष्ट साधन नहीं करता? अर्थात् सब कुछ करता है।[1]

इसीलिए तो कवियों ने ज्ञान की महानता का दिग्दर्शन क हुए नानाविध उपमाओं से उसे उपमित किया है।

"ज्ञान सचमुच कल्पवृक्ष से भी बढ़कर अभीष्ट फल देने व है, स्वर्ग लोक की कामधेनु से भी बढ़कर अमृत प्रदान करने वाल

१—तमो धुनीते कुरुते प्रकाशं, शमं विधत्ते विनिहन्ति कोपम्।
तनोति धर्मं विधुनोति पापं, ज्ञानं न किं किं कुरुते नराणाम्॥

"ज्ञानवानों के पास संसार का भय भटक ही नही सकता ।"[१]

अन्य अनुभवियो का सार भी द्रष्टव्य है ।

'ज्ञान के प्रासाद पर चढकर मनुष्य बहुत बडे भय से मुक्त हो सकता है ।[२]

"ज्ञान-दीपक के प्रकाश के फैलते ही ससार-भय लौट जाता है ।[३]

'सम्पूर्ण प्रकार के अन्धकार समूह के नष्ट करने में ज्ञान के समान कोई दीपक नही है ।[४]

"अज्ञान सब से बडा दुःख है, अज्ञान से भय उत्पन्न होता है। सब प्राणियो के संसार परिभ्रमण का मूल कारण अज्ञान ही है ।[५]

लोग समझा करते हैं कि मेरे पास पैसा नही है अतः मे गरीब हूँ किन्तु सच्चा गरीब तो वह है जिसके पास बुद्धि का दिवाला है; ज्ञान का अभाव है । उससे बढकर इस संसार में कोई भी गरीब नही है। जिसके पास ज्ञान है किन्तु लक्ष्मी नही तब भी वह व्यक्ति अपनी बुद्धि के द्वारा संसार सागर के विषम मार्ग से अपनी नाव को सरलता पूर्वक खे सकता है।

१—न संसार भय ज्ञानवताम् ।।

२—प्रज्ञा प्रासाद मारुह्य, मुच्यते महतो भयात् ।।

३—विज्ञान दीपेन संसार भयं निवर्तते ।।

४—नस्ति ज्ञान समो दीपः सर्वान्धाकार नाशने ।।

५—अण्णाणं परमं दुक्खं, अण्णाणा जायते भयम अण्णाण मूलो संसारो, विविहो सव्व देहिणं (इसिभासियाइं)

"ज्ञानवानों के पास संसार का भय भटक ही नही सकता ।"[1]

अन्य अनुभवियो का सार भी द्रष्टव्य है ।

'ज्ञान के प्रासाद पर चढकर मनुष्य बहुत बडे भय से मुक्त हो सकता है ।[2]

"ज्ञान-दीपक के प्रकाश के फैलते ही ससार-भय लौट जाता है ।[3]

'सम्पूर्ण प्रकार के अन्धकार समूह के नष्ट करने में ज्ञान के समान कोई दीपक नही है ।[४]

"अज्ञान सब से बडा दुःख है, अज्ञान से भय उत्पन्न होता है । सब प्राणियो के संसार परिभ्रमण का मूल कारण अज्ञान ही है ।[५]

लोग समझा करते हैं कि मेरे पास पैसा नही है अतः मैं गरीब हू किन्तु सच्चा गरीब तो वह है जिसके पास बुद्धि का दिवाला है; ज्ञान का अभाव है । उससे बढकर इस संसार में कोई भी गरीब नही है । जिसके पास ज्ञान है किन्तु लक्ष्मी नही तब भी वह व्यक्ति अपनी बुद्धि के द्वारा संसार सागर के विषम मार्ग से अपनी नाव को सरलता पूर्वक खे सकता है ।

१—न संसार भय ज्ञानवताम् ।।

२—प्रज्ञा प्रासाद मारुह्य, मुच्यते महतो भयात् ।।

३—विज्ञान दीपेन संसार भयं निवर्तते ।।

४—नस्ति ज्ञान समो दीपः सर्वान्धाकार नाशने ।।

५—अण्णाणं परमं दुक्ख, अण्णाणा जायते भयम अण्णाण मूलो संसारो, विविहो सव्व देहिणं (इसिभासियाइं)

ज्ञान के बिना ज्ञानी नही बन सकता। अतः साधक का कर्त्तव्य होता है कि वह सम्यक ज्ञान का प्रकाश लेकर ही जीवन में यात्रा स्वीकार करे

"जिस प्रकार विषम गर्त में गिरा हुआ मानव लता आदि को पकड़ कर ऊपर आ जाता है, उसी प्रकार ससार रूपी विषम गर्त मे पड़ा हुआ व्यक्ति ज्ञान आदि का अवलम्बन लेकर मोक्ष रूपी तट पर आ जाता है।[1]"

जैसे दिवाकर के उदित होते ही अंधकार लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी प्रखर सूर्य के महाप्रकाश में राग-द्वेष, विषय-कषाय रूप अज्ञानान्धकार टिक ही नही सकता।

जैनागमों मे ज्ञान के अनेक भेद एवं उपभेद उपलब्ध होते हैं। उनमें मुख्य पांच भेद हैं—

"मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्याय ज्ञान और केवल ज्ञान।[2]"

इसी बात को 'राजप्रश्नीय सूत्र' में यों कहा है—

"पंचविहे नाणे पण्णत्ते तंजहा-अभिनिबोहिय नाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे केवल नाणे।"

'तत्वार्थ सूत्र' के रचयिता आचार्य उमास्वाति ने भी कहा है—

"मतिश्रुतावधि मनःपर्याय केवलानि ज्ञानम्॥ (त०)

१. मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की मदद से रूपी अथवा अरुपी पदार्थों को आंशिक रूप में जानना मतिज्ञान है। उसका दूसरा

१—समार गड्डगतिवो, णाणादवलबितु समारुहति।
मोक्ख तड जहा पुरिसो वल्लि विताणेण विसमाओ. (निशिथ भाष्य ४६५)

२—तत्थ पचविह नाणं सुय आभिनिबोहिय।
ओहिनाणं तु तइय मणनाणं च केवल (उ० अ० २८ गा० ४)

ज्ञान के बिना ज्ञानी नही बन सकता। अतः साधक का कर्त्तव्य होता है कि वह सम्यक ज्ञान का प्रकाश लेकर ही जीवन में यात्रा स्वीकार करे

"जिस प्रकार विषम गर्त में गिरा हुआ मानव लता आदि को पकड़ कर ऊपर आ जाता है, उसी प्रकार ससार रूपी विषम गर्त मे पड़ा हुआ व्यक्ति ज्ञान आदि का अवलम्बन लेकर मोक्ष रूपी तट पर आ जाता है।[1]"

जैसे दिवाकर के उदित होते ही अंधकार लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञान रूपी प्रखर सूर्य के महाप्रकाश में राग-द्वेष, विषय-कषाय रूप अज्ञानान्धकार टिक ही नही सकता।

जैनागमों मे ज्ञान के अनेक भेद एवं उपभेद उपलब्ध होते हैं। उनमें मुख्य पांच भेद हैं—

"मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मनःपर्याय ज्ञान और केवल ज्ञान।[2]"

इसी बात को 'राजप्रश्नीय सूत्र' में यों कहा है—

"पंचविहे नाणे पण्णत्ते तंजहा-अभिनिबोहिय नाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, मणपज्जवनाणे केवल नाणे।"

'तत्वार्थ सूत्र' के रचयिता आचार्य उमास्वाति ने भी कहा है—

"मतिश्रुतावधि मनःपर्याय केवलानि ज्ञानम्॥ (त०)

१. मति ज्ञान—इन्द्रिय और मन की मदद से रुपी अथवा अरुपी पदार्थों को आंशिक रूप मे जानना मतिज्ञान है। उसका दूसरा

१—समार गड्डुपतितो, णाणादवलंबितु समारुहति।
मोक्ख तड जहा पुरिसो वल्लि विताणेण विसमाओ. (निशिथ भाष्य ४६५)

२—तत्थ पचविह नाणं सुय आभिनिबोहिय।
ओहिनाण तु तइय मणनाणं च केवल (उ० अ० २८ गा० ४)

२. श्रुतज्ञान—पाँच ज्ञानों में दूसरा ज्ञान है-श्रुतज्ञान। और पर को बोध कराने वाला श्रुतज्ञान है।[1]"

श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है। शास्त्र से सम्बद्ध ज्ञान श्रुतज्ञान कहते हैं। अन्य ज्ञानो की अपेक्षा इस ज्ञान में विशेषता है साधना की दृष्टि से श्रुतज्ञान सब ज्ञानो से श्रेष्ठ है।[2]"

चार ज्ञान मूक हैं एवं श्रुतज्ञान मुखर है। चार ज्ञान वस्तु के स्वरूप को जानते हैं किन्तु उसका कथन नही कर सक वस्तु स्वरूप के कथन की शक्ति सिर्फ श्रुतज्ञान मे ही है। श्रुतज्ञान मन एवं इन्द्रियों से होता है। उसके जैन आगमो मे अनेक उपलब्ध होते हैं। जैसे

'अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत, सन्नी श्रुत एवं असन्नी श्रु सम्यक् श्रुत और मिथ्या श्रुत, सादि श्रुत और अनादि श्रु सपर्यवसित श्रुत, और अपर्यवसित श्रुत, गमिक श्रुत और आगमि श्रुत, अंग प्रविष्ट श्रुत और अंग बाह्य श्रुत।[3]

अब एक प्रश्न होता है कि इन दोनों ज्ञानों का अस्तित्व के ज्ञान की प्राप्ति होने के अनन्तर भी रहता है या नहीं ?

इस विषय में कुछ आचार्यों के मतभेद हैं। कुछ आचार्य कह कि केवल ज्ञान होने के बाद भी मति, श्रुत ज्ञान उसी प्रकार रह जिस प्रकार प्रचण्ड सूर्योदय के महाप्रकाश मे ग्रह नक्षत्र आदि। उ उनका प्रकाश उस महाप्रकाश में तिरोहित हो जाता है उसी प्र मति, श्रुत ज्ञान भी केवल ज्ञान मे छिप जाते हैं।

१—स्व पर प्रत्यायकं सुतनाएं (नन्दी सू० ४४)

२—सव्वरणारणुत्तर सुयरणाए (उत्त० चू० १)

३—अक्खर सन्नी सम्म, साइय खलु सपज्जवसियं च।
गमियं अंग पविट्टं सत्तवि एएस पडिक्खा॥ (नन्दी)

२. श्रुतज्ञान—पाँच ज्ञानों में दूसरा ज्ञान है-श्रुतज्ञान और पर को बोध कराने वाला श्रुतज्ञान है।[1]"

श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है। शास्त्र से सम्बद्ध ज्ञा श्रुतज्ञान कहते हैं। अन्य ज्ञानो की अपेक्षा इस ज्ञान में विशेषता साधना की दृष्टि से श्रुतज्ञान सब ज्ञानो से श्रेष्ठ है।[2]"

चार ज्ञान मूक हैं एवं श्रुतज्ञान मुखर है। चार ज्ञान वस्तु के स्वरूप को जानते हैं किन्तु उसका कथन नही कर स वस्तु स्वरूप के कथन की शक्ति सिर्फ श्रुतज्ञान मे ही है। श्रुतज्ञा मन एवं इन्द्रियों से होता है। उसके जैन आगमो मे अनेक उपलब्ध होते हैं। जैसे

'अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत, सन्नी श्रुत एवं असन्नी सम्यक् श्रुत और मिथ्या श्रुत, सादि श्रुत और अनादि सपर्यवसित श्रुत, और अपर्यवसित श्रुत, गमिक श्रुत और आग श्रुत, अंग प्रविष्ट श्रुत और अंग बाह्य श्रुत।[3]

अब एक प्रश्न होता है कि इन दोनों ज्ञानों का अस्तित्व वे ज्ञान की प्राप्ति होने के अनन्तर भी रहता है या नहीं ?

इस विषय में कुछ आचार्यों के मतभेद हैं। कुछ आचार्य कह कि केवल ज्ञान होने के बाद भी मति, श्रुत ज्ञान उसी प्रकार र जिस प्रकार प्रचण्ड सूर्योदय के महाप्रकाश मे ग्रह नक्षत्र आदि। उ उनका प्रकाश उस महाप्रकाश में तिरोहित हो जाता है उसी प्र मति, श्रुत ज्ञान भी केवल ज्ञान मे छिप जाते हैं।

१—स्व पर प्रत्यायकं सुतनाए (नन्दी सू० ४४)

२—सव्वणाणुत्तर सुयणाए (उत्त० चू० १)

३—अक्खर सन्नी सम्म, साइय खलु सपज्जवसियं च।
गमियं अंग पविट्ठं सत्तवि एएस पडिक्खा॥ (नन्दी)

भूमि में उत्पन्न गर्भज, संख्यात वर्ष की आयु वाला, पर्याप्ता, सम्यक्-दृष्टि, संयति अप्रमत्त और ऋद्धि-संपन्न।

मानव के मनस्थ भावो को जानना मनः पर्याय ज्ञान है। यह मनः पर्याय ज्ञान द्विविध है। ऋजुमति और विपुल मति। ऋजु मति की अपेक्षा विपुल मति का ज्ञान विशेष विशुद्ध होता है। ऋजु मति ज्ञान प्रतिपाति है (आकर चला जाता है) किन्तु विपुल मति अप्रतिपाति है। यह ज्ञान भी आत्म साक्षात्कार से होता है, अतः प्रत्यक्ष ज्ञान है।

प्रत्यक्ष के दो भेद हैं। एक सकल और दूसरा विकल। अवधि एव मन. पर्याय ये दोनो विकल प्रत्यक्ष है और केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष। अवधि ज्ञान से केवल रूपी पदार्थों को ही जाना जाता है और मनः पर्याय ज्ञान रूपी पदार्थ के अनन्तवे भाग सिर्फ मन की पर्यायों को ही जानता है। अतः विकल प्रत्यक्ष ज्ञान है।

५ केवल ज्ञान— पाँच ज्ञानों में अंतिम ज्ञान है—केवल ज्ञान। यह ज्ञान विशुद्धतम है। इसे क्षायिक ज्ञान कहते हैं। आत्मा की पूर्ण शक्ति के चरम विकास का नाम केवल ज्ञान है। इस ज्ञान का विकास होने पर एक भी ज्ञान नहीं रहता है। यह ज्ञान अनन्त-अनन्त भूत, भविष्य और वर्तमान काल की पर्यायों का युगपत् (एक साथ) ज्ञान कराता है। केवल ज्ञान देश काल की सीमा से परे है। वह रूपी तथा अरूपी सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष कराता है अतः सकल प्रत्यक्ष कहा जाता है।

'शक्रस्तव' मे भगवान के विशेषणों में 'अपडिहयवरनाण' में इसी ज्ञान की ओर सकेत है।

जैन साधना का चरमोत्कर्ष केवल ज्ञान की प्राप्ति होना ही है।

इन पाचो ज्ञानों में से एक जीव में एक साथ चार ज्ञान हो सकते हैं। किसी में एक, किसी में दो, किसी में तीन तथा किसी में चार

भूमि में उत्पन्न गर्भज, संख्यात वर्ष की आयु वाला, पर्याप्ता, सम्यक्-दृष्टि, सयति अप्रमत्त और ऋद्धि-सपन्न।

मानव के मनस्थ भावों को जानना मनः पर्याय ज्ञान है। यह मनः पर्याय ज्ञान द्विविध है। ऋजुमति और विपुल मति। ऋजु मति की अपेक्षा विपुल मति का ज्ञान विशेष विशुद्ध होता है। ऋजु मति ज्ञान प्रतिपाति है (आकर चला जाता है) किन्तु विपुल मति अप्रतिपाति है। यह ज्ञान भी आत्म साक्षात्कार से होता है, अतः प्रत्यक्ष ज्ञान है।

प्रत्यक्ष के दो भेद हैं। एक सकल और दूसरा विकल। अवधि एव मन. पर्याय ये दोनो विकल प्रत्यक्ष है और केवल ज्ञान सकल प्रत्यक्ष। अवधि ज्ञान से केवल रूपी पदार्थों को ही जाना जाता है और मनः पर्याय ज्ञान रूपी पदार्थ के अनन्तवे भाग सिर्फ मन की पर्यायों को ही जानता है। अतः विकल प्रत्यक्ष ज्ञान है।

५ केवल ज्ञान— पाँच ज्ञानों में अंतिम ज्ञान है--केवल ज्ञान। यह ज्ञान विशुद्धतम है। इसे क्षायिक ज्ञान कहते हैं। आत्मा की पूर्ण शक्ति के चरम विकास का नाम केवल ज्ञान है। इस ज्ञान का विकास होने पर एक भी ज्ञान नहीं रहता है। यह ज्ञान अनन्त-अनन्त भूत, भविष्य और वर्तमान काल की पर्यायों का युगपत् (एक साथ) ज्ञान कराता है। केवल ज्ञान देश काल की सीमा से परे है। वह रूपी तथा अरूपी सभी पदार्थों को प्रत्यक्ष कराता है अतः सकल प्रत्यक्ष कहा जाता है।

'शक्रस्तव' मे भगवान के विशेषणों में 'अपडिहयवरनाण' में इसी ज्ञान की ओर सकेत है!

जैन साधना का चरमोत्कर्ष केवल ज्ञान की प्राप्ति होना ही है।

इन पाचो ज्ञानों में से एक जीव में एक साथ चार ज्ञान हो सकते हैं। किसी में एक, किसी में दो, किसी में तीन तथा किसी में चार

है और न दु.ख में झूलता है। क्योंकि वह भलीभांति जानता है सुख-दुःख का क्रम अनवरत चलता ही रहता है। काली रात्रि का अन्त विहँसते प्रभात से होता है और हर सुरभित सुमन खिलने के पश्चात मुरझाता ही है। सुख और दु.ख भी स्थिर नही रहते। इस प्रसग पर राजा भोज के जीवन की घटना सहसा मेरी स्मृति पटल पर आजाती है।

राजा भोज ने अपनी अंगुली में एक ऐसी मुद्रिका पहन रखी थी जिसमें यह लिखा था कि—

"यह भी न रहेगा"।

जब वे किसी भयकर संकटकालीन घड़ी में होते तब भी उनकी दृष्टि उस मुद्रिका पर जाती और तत्काल संभल कर सोचने लगते कि यह दु ख सदा रहने वाला नही है। यह तो एक दिन जैसे आया है, वैसे ही उल्टे पैरों भग जायेगा। इससे चिन्तित होने की आवश्यकता नही। इस प्रकार सोचकर वे कभी दु.ख मे घबराते नही और जब सुख का सागर उनके समक्ष हिलोरे मारता तो वे इस पक्ति को पढ़कर कभी सुख मे फूल कर मस्त नही बनते।

'मरण समाधि' मे कहा है—

"ज्ञान और चरित्र की साधना से ही दुख-मुक्ति होती है"[1]

मन को वश करने मे ज्ञान से पूरी सहायता मिलती है। यह मन बडा चचल है। पर इस मन को भी ज्ञान से संभावित किया जा सकता है। 'मरण समाधि' में एक रूपक द्वारा इस बात को स्पष्ट किया गया है—

१—नाणेण य करणेण य, दोहिवि दुक्खयं होइ (मरण समाधि ...

है खटकता एक सब की आंख में।
दूसरा है सोहता सुर शीश पर॥
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर॥

फूल और कांटे की उत्पत्ति साथ-साथ होने पर भी दोनों के जी मे महान् अंतर होता है। एक का जीवन दूसरों के लिए सुखक होता है और दूसरे का जीवन दूसरों के लिए कष्टप्रद। ठीक इ प्रकार ज्ञानी दूसरो के लिए सुखप्रद होता है एवं अज्ञानी कष्टप्रद।

फूल सबको प्रिय लगता है। वह गले का हार होता है। दे के सिर पर आरूढ होता है जबकि कांटा सबके द्वारा तिरस्कृत अपमानित होता है।

ऐसा क्यो ? फूल मे कई गुण है। उसमें सुवास है, सौन्द है, पराग है, आकर्षण है जब कि कांटा तितलियों के पंख कतर दे है वस्त्र फाड़ देता है, पैरो में चुभ कर पीड़ित करता है। ठीक इस प्रकार ज्ञानी फूल की तरह खिलकर सौरभ लुटाता है और अज्ञानी कां की तरह बिखर कर जन समुदाय को आतंकित एवं पीड़ित करता है

इस प्रकार जाज्वल्यमान चिन्तामणी रत्न सदृश शुभ निर्म ज्ञान को कौन प्राप्त नही करता। हमे सर्व प्रथम ज्ञान प्राप्ति मे बाधक जो ज्ञानावरणीय कर्म है, उसका क्षय तथा क्षयोपशम करना होगा ज्ञान प्राप्ति के प्रतिबन्धक जो छः कारण हैं, उनसे बचना होगा छः कारण इस प्रकार हैं—

१. ज्ञान तथा ज्ञानी का अवर्णवाद बोलना।
२. ज्ञान तथा ज्ञानी की निन्दा करना।
३. ज्ञान तथा ज्ञानी की आसातना करना।
४. ज्ञान में अन्तराय विघ्न डालना।
५. ज्ञानी के साथ द्वेष करना।
६ ज्ञानी के साथ विसंवाद करना।

है खटकता एक सब की आंख में।
दूसरा है सोहता सुर शीश पर ।।
किस तरह कुल की बड़ाई काम दे।
जो किसी में हो बड़प्पन की कसर ।।

फूल और काटे की उत्पत्ति सग-सग होने पर भी दोनो के जीव मे महान् अंतर होता है। एक का जीवन दूसरों के लिए सुखकारी होता है और दूसरे का जीवन दूसरों के लिए कष्टप्रद। ठीक इसी प्रकार ज्ञानी दूसरो के लिए सुखप्रद होता है एवं अज्ञानी कष्टप्रद।

फूल सबको प्रिय लगता है। वह गले का हार होता है। दोनों के सिर पर आरूढ होता है जबकि काटा सबके द्वारा तिरस्कृत व अपमानित होता है।

ऐसा क्यो ? फूल मे कई गुण है। उसमें सुवास है, सौन्द है, पराग है, आकर्षण है जब कि काटा तितलियों के पंख कतर दे है वस्त्र फाड़ देता है, पैरो में चुभ कर पीड़ित करता है। ठीक इस प्रकार ज्ञानी फूल की तरह खिलकर सौरभ लुटाता है और अज्ञानी कां की तरह बिखर कर जन समुदाय को आतंकित एव पीड़ित करता है

इस प्रकार जाज्वल्यमान चिन्तामणी रत्न सदृश शुभ निर्मल ज्ञान को कौन प्राप्त नही करता। हमे सर्व प्रथम ज्ञान प्राप्ति मे बाधक जो ज्ञानावरणीय कर्म है, उसका क्षय तथा क्षयोपशम करना होगा ज्ञान प्राप्ति के प्रतिबन्धक जो छः कारण हैं, उनसे बचना होगा छः कारण इस प्रकार हैं—

१. ज्ञान तथा ज्ञानी का अवर्णवाद बोलना।
२. ज्ञान तथा ज्ञानी की निन्दा करना।
३. ज्ञान तथा ज्ञानी की आसातना करना।
४. ज्ञान में अन्तराय विघ्न डालना।
५. ज्ञानी के साथ द्वेष करना।
६. ज्ञानी के साथ विसंवाद करना।

ज्ञान का इतना अतिशयपूर्ण महत्व होने पर भी वह क्रिया के अभाव मे पंगु ही है। विवेचन के साथ आचरण, ज्ञान के साथ क्रिया का संयोग कंचन-मणिके तुल्य है। इन दोनो का सुन्दर समन्वय ही हर साधक का लक्ष्य होना चाहिए।

ज्ञान आत्मा का ही एक भाव है और वह आत्मा से कभी भी अलग नही होता है।

आगम ज्ञान किसी अयोग्य व्यक्ति को तो देना ही नही चाहिए और योग्य व्यक्ति को उस ज्ञान से वंचित नही रखना चाहिए। जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े मे रखा हुआ जल उस घट को ही नष्ट कर देता है, ठीक इसी प्रकार अयोग्य को दिया हुआ आगम ज्ञान उस मन्दबुद्धि को ही नष्ट-विनष्ट करने के लिए होता है। 'हितोपदेश' की नीति मे भी एक स्थल पर क्या ही सुन्दर भाव व्यक्त किए है—

"मूर्खों को उपदेश उनके कोप बढाने के लिए ही होता है, शान्ति के लिए नही, जैसे सर्पों को दूध पिलाना, उनके विष को बढाना है।"[1]

किसी हिन्दी कवि की यह उक्ति भी अनूठी है—

"हित हु की कहिये नही, जो नर होत अबोध।
ज्यो 'नकटे' को आरसी, होत दिखाये क्रोध॥"

अतः गुरु का कर्तव्य होता है कि वह योग्य शिष्य को ज्ञान देकर गुरुत्व क ऋण से मुक्त हो जाय।

आत्मा को कर्म ऋण से मुक्त करने का सर्व प्रमुख मार्ग ज्ञान एवं क्रिया से मुक्त जीवन-साधन है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा के मेल से ही जीवन तेजस्वी और शान्तकाभी बन सकता है। जब तक ये दोनो पृथक-पृथक बने रहेगे, जीवन सत्रस्त और व्याकुल बना रहेगा। इसी

१—उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजंगाना केवलं विषवर्धनम्॥ (हितोपदेश)

ज्ञान का इतना अतिशयपूर्ण महत्व होने पर भी वह क्रिया के अभाव मे पंगु ही है। विवेचन के साथ आचरण, ज्ञान के साथ क्रिया का सयोग कचन-मणिके तुल्य है। इन दोनो का सुन्दर समन्वय ही हर साधक का लक्ष्य होना चाहिए।

ज्ञान आत्मा का ही एक भाव है और वह आत्मा से कभी भी अलग नही होता है।

आगम ज्ञान किसी अयोग्य व्यक्ति को तो देना ही नही चाहिए और योग्य व्यक्ति को उस ज्ञान से वचित नही रखना चाहिए। जैसे मिट्टी के कच्चे घड़े मे रखा हुआ जल उस घट को ही नष्ट कर देता है, ठीक इसी प्रकार अयोग्य को दिया हुआ आगम ज्ञान उस मन्दबुद्धि को ही नष्ट-विनष्ट करने के लिए होता है। 'हितोपदेश' की नीति मे भी एक स्थल पर क्या ही सुन्दर भाव व्यक्त किए है—

"मूर्खों को उपदेश उनके कोप बढाने के लिए ही होता है, शान्ति के लिए नही, जैसे सर्पों को दूध पिलाना, उनके विष को बढाना है।"[1]

किसी हिन्दी कवि की यह उक्ति भी अनूठी है—

"हित हु की कहिये नही, जो नर होत अबोध।
ज्यो 'नकटे' को आरसी, होत दिखाये क्रोध॥"

अतः गुरु का कर्त्तव्य होता है कि वह योग्य शिष्य को ज्ञान देकर गुरुत्व के ऋण से मुक्त हो जाय।

आत्मा को कर्म ऋण से मुक्त करने का सर्व प्रमुख मार्ग ज्ञान एवं क्रिया से मुक्त जीवन-साधन है। ज्ञान, क्रिया और इच्छा के मेल से ही जीवन तेजस्वी और शान्तकामी बन सकता है। जब तक ये दोनो पृथक-पृथक बने रहेंगे, जीवन सत्रस्त और व्याकुल बना रहेगा। इसी

१—उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजंगाना केवलं विषवर्धनम्॥ (हितोपदेश)

द्वितीय दिवस

दर्शन दिवस

द्वितीय दिवस

द

र्श

न

दि

व

२ | सम्यग्दर्शन

दृष्टि सबको प्राप्त है, किन्तु देखने के ढंग सबके निराले हैं।

दृश्य पदार्थों के विषय में प्रत्येक प्राणी की विभिन्नता देखी जाती है। दृष्टि-भेद के इस प्रसंग को सरलता से समझने के लिए एक दृष्टान्त द्रष्टव्य है।

एक विलासिता नारी का मृत सुन्दर कलेवर। उस राह से एक कामी व्यक्ति निकला। सुन्दर शव पर दृष्टि पड़ते ही उसकी विचार धारा निम्न रूप में प्रकट हुई।

"हाय! काम-पूर्ति का एक मनोरम साधन नष्ट हो गया"

कुछ क्षण अन्तर उसी पथ से एक *त्यागी* विरक्त महात्मा कहते हुए गुजरे—

"ओह, संसार कितना क्षणिक है। कुछ क्षण पूर्व हंसता मचलता यह शरीर अब निष्प्राण है।"

पास ही खड़े एक श्वान की दृष्टि कुछ और ही थी। वहां तो राग है न विराग, वह तो सोच रहा था-लोग दूर हट जांय तो इ सुस्वादु मांस, रुधिर का भक्षण किया जाय।

परन्तु, महत्व दृष्टि का न होकर शुद्ध सम्यग्दृष्टि का है। स चिन्तन ही महत्वपूर्ण है। शुद्ध विचार धारा का नाम ही शास्त्र शब्दों में सम्यग्दर्शन है।

इस सम्यग्दर्शन का महत्व अनन्त है। ज्ञान और क्रिया समीचीनता, सम्यग्दर्शन की अनन्त शक्ति से ही प्राप्त हो सकती।

२ | सम्यग्दर्शन

दृष्टि सबको प्राप्त है, किन्तु देखने के ढंग सबके निराले हैं।

दृश्य पदार्थों के विषय में प्रत्येक प्राणी की विभिन्नता देखी जाती है। दृष्टि-भेद के इस प्रसंग को सरलता से समझने के लिए एक दृष्टान्त द्रष्टव्य है।

एक विलासिता नारी का मृत सुन्दर कलेवर। उस राह से एक कामी व्यक्ति निकला। सुन्दर शव पर दृष्टि पड़ते ही उसकी विचार-धारा निम्न रूप मे प्रकट हुई।

"हाय! काम-पूर्ति का एक मनोरम साधन नष्ट हो गया"

कुछ क्षण अन्तर उसी पथ से एक त्यागी विरक्त महात्मा कहते हुए गुजरे—

"ओह, संसार कितना क्षणिक है। कुछ क्षण पूर्व हंसता, बलता यह शरीर अब निष्प्राण है।"

पास ही खड़े एक श्वान की दृष्टि कुछ और ही थी। वहां न तो राग है न विराग, वह तो सोच रहा था-लोग दूर हट जाँय तो इस सुस्वादु मास, रुधिर का भक्षण किया जाय।

परन्तु, महत्व दृष्टि का न होकर शुद्ध सम्यग्दृष्टि का है। सही चिन्तन ही महत्वपूर्ण है। शुद्ध विचार धारा का नाम ही शास्त्रीय शब्दों में सम्यग्दर्शन है।

इस सम्यग्दर्शन का महत्व अनन्त है। ज्ञान और क्रिया में समीचीनता, सम्यग्दर्शन की अनन्त शक्ति से ही प्राप्त हो सकती है।

जिसका अन्तर-मानस सम्यग्दर्शन के महा प्रकाश से जगमगाता है, वह पशु भी मानव के सदृश माना जाता है और जिस मानव का जीवन मिथ्यात्व की कालिमा से काला है, अज्ञान अन्धकार से व्याप्त है, उस मानव की पशुओं की कोटि में गणना होती है।

तो प्रश्न होता है, इतना महामहिम सम्यग्दर्शन क्या है? इसका स्वरूप कैसा है?

"जीव, अजीव आदि नव तत्वो पर यथार्थ श्रद्धा प्रतीति एवं रुचि करना ही सम्यग्दर्शन है।"[१]

"काम, क्रोध, मोह, मात्सर्य, छल-छद्म आदि दोषों के पूर्ण विजेता मेरे देव हैं।"

"शुद्ध पंच महाव्रतधारी उत्तम निर्ग्रंथ मेरे गुरु हैं।"

"और केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित तत्व मेरा धर्म है।"[२] इस प्रकार इन तीन तत्वो पर दृढ़ श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन है।

यह सम्यग्दर्शन ही वह मूलाधार है जिस पर साधना का सुरम्य प्रासाद सुस्थिर रहता है।

इस अमूल्य सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति आत्मा को किस प्रकार होती है, इसके लिए शास्त्रो में सुन्दर विवेचन है।

आत्मा अनादि काल से मिथ्यात्व कर्दम से मलिन है, कलुषित है, अज्ञान से आच्छादित है, मोह के पर्दे से व्याप्त है, छल छद्म से काला है, समय पर उसका भी शुद्धिकरण किया जा सकता है। एक दिन आत्मा अन्धकार से निकल कर सम्यग्दर्शन रूप प्रकाश की ओर

१—तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्   (तत्त्वार्थ सूत्र)

२—अरिहन्तो महदेवो,
जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो।
जिण पण्णत्तं तत्तं,
इय सम्मत्तं मए गहियं ॥

जिसका अन्तर-मानस सम्यग्दर्शन के महा प्रकाश से जगमगाता है, वह पशु भी मानव के सदृश माना जाता है और जिस मानव का जीवन मिथ्यात्व की कालिमा से काला है, अज्ञान अन्धकार से व्याप्त है, उस मानव की पशुओं की कोटि में गणना होती है।

तो प्रश्न होता है, इतना महामहिम सम्यग्दर्शन क्या है? इसका स्वरूप कैसा है?

"जीव, अजीव आदि नव तत्वों पर यथार्थ श्रद्धा प्रतीति एवं रुचि करना ही सम्यग्दर्शन है।"[१]

"काम, क्रोध, मोह, मात्सर्य, छल-छद्म आदि दोषों के पूर्ण विजेता मेरे देव हैं।"

"शुद्ध पंच महाव्रतधारी उत्तम निर्ग्रंथ मेरे गुरु हैं।"

"और केवली भगवान् द्वारा प्ररूपित तत्व मेरा धर्म है।"[२]
इस प्रकार इन तीन तत्वों पर दृढ़ श्रद्धा का नाम सम्यग्दर्शन है।

यह सम्यग्दर्शन ही वह मूलाधार है जिस पर साधना का सुरम्य प्रासाद सुस्थिर रहता है।

इस अमूल्य सम्यक्त्व रत्न की प्राप्ति आत्मा को किस प्रकार होती है, इसके लिए शास्त्रों में सुन्दर विवेचन है।

आत्मा अनादि काल से मिथ्यात्व कर्दम से मलिन है, कलुषित है, अज्ञान से आच्छादित है, मोह के पर्दे से व्याप्त है, छल छद्म से काला है, समय पर उसका भी शुद्धिकरण किया जा सकता है। एक दिन आत्मा अन्धकार से निकल कर सम्यग्दर्शन रूप प्रकाश की ओर

१—तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम् (तत्त्वार्थ सूत्र)

२—अरिहन्तो महदेवो,
जावज्जीवाए सुसाहुणो गुरुणो।
जिण पण्णत्तं तत्तं,
इअ सम्मत्तं मए गहियं ॥

एक सेठ के तीन पुत्रो ने व्यापार निमित्त किसी अच्छे नगर ओर प्रस्थान किया।

पहाड़ी घाटी मे पहुँचने पर दो डाकुओ ने उन पर हमला किय

सबसे छोटा भाई उन डाकुओ को राक्षस सदृश भयंकर आकृ से घबराकर तत्क्षण विमुख हो, बचकर भाग गया।

दूसरा जो कुछ साहसी था वह पीछे की तरफ तो न मुड़ा पर यथोचित साहस के अभाव मे उन डाकुओ के कुचक्र मे पडकर बन्दी गया।

पर तीसरा था अत्यन्त पराक्रमशील। उसने डटकर उन डाकु की चुनौती का मजबूती से जवाब दिया और उन्हे अपने बल वि मे परास्त कर, गन्तव्य स्थल पर सुरक्षित पहुँच गया।

इस कथा का साराश यह है कि श्रेष्ठी पुत्रों की तरह से तं करण पहाडी घाटी के तुल्य ग्रन्थि भेद है। दो डाकुओ के स राग द्वेष है, सेठ के तीन पुत्रों के समान तीन करण, सम्यग्दर्शन निधि की संप्राप्ति के लिए रवाना हुए व्यापारी-यात्री हैं।

यथा-प्रवृत्तिकरण वाला ग्रन्थिभेद की पहाडी घाटी मे राग द्व रूप डाकुओं से भयभीत हो, पीछे की ओर खिसक जाता है।

अपूर्वकरणवाला भी उन डाकुओ पर पूर्ण विजय तो प्राप्त कर सकता है किन्तु करने का प्रबल इच्छुक होता है।

किन्तु, अनिवृत्ति करण वाला व्यक्ति इतना विशिष्ट बली है, जो राग द्वेष की विषय ग्रन्थि का भेदन करके सम्यग्दर्शन अमूल्य निधि को प्राप्त कर ही लेता है।

सम्यग्दर्शन का उदय-स्थल आत्मा है। ससारस्थ आत्माओ को तीन विभागो मे विभक्त किया गया है :—

१. बहिरात्मा—यह आत्मा पुद्गलानन्दी होता है। बुद्धि व जडता से वह जीव और देह को एक ही मानता है। स्वर्ग, नरक, पुण्य पाप पर उसका विश्वास ही नही होता है। उसका मन्तव्य होता

एक सेठ के तीन पुत्रों ने व्यापार निमित्त किसी अच्छे :
ओर प्रस्थान किया।

पहाड़ी घाटी में पहुँचने पर दो डाकुओं ने उन पर हमला

सबसे छोटा भाई उन डाकुओं को राक्षस सदृश भयंकर आ
से घबराकर तत्क्षण विमुख हो, बचकर भाग गया।

दूसरा जो कुछ साहसी था वह पीछे की तरफ तो न मुड़ा '
यथोचित साहस के अभाव में उन डाकुओं के कुचक्र में पड़कर बन्
गया।

पर तीसरा था अत्यन्त पराक्रमशील। उसने डटकर उन डा
की चुनौती का मजबूती से जवाब दिया और उन्हें अपने बल ि
में परास्त कर, गन्तव्य स्थल पर सुरक्षित पहुँच गया।

इस कथा का साराश यह है कि श्रेष्ठी पुत्रों की तरह से
करण पहाड़ी घाटी के तुल्य ग्रन्थि भेद है। दो डाकुओं के
राग द्वेष है, सेठ के तीन पुत्रों के समान तीन करण, सम्यग्दर्श
निधि की संप्राप्ति के लिए रवाना हुए व्यापारी-यात्री हैं।

यथा-प्रवृत्तिकरण वाला ग्रन्थिभेद की पहाड़ी घाटी में रा
रूप डाकुओं से भयभीत हो, पीछे की ओर खिसक जाता है।

अपूर्वकरणवाला भी उन डाकुओं पर पूर्ण विजय तो
प्राप्त कर सकता है किन्तु करने का प्रबल इच्छुक होता है।

किन्तु, अनिवृत्ति करण वाला व्यक्ति इतना विशिष्ट व्रती
है, जो राग द्वेष की विषय ग्रन्थि का भेदन करके सम्यग्दश
अमूल्य निधि को प्राप्त कर ही लेता है।

सम्यग्दर्शन का उदय-स्थल आत्मा है। संसारस्थ आ
को तीन विभागों में विभक्त किया गया है :—

१. बहिरात्मा—यह आत्मा पुद्गलानन्दी होता है। बु
जड़ता से वह जीव और देह को एक ही मानता है। स्वर्ग, नरक
पाप पर उसका विश्वास ही नहीं होता है। उसका मन्तव्य है

दशा को सम्यग्दर्शन कहते हैं और अशुद्ध अवस्था को मिथ्या-दर्शन कहा जाता है।

मिथ्यादर्शन आत्मा का विकारी भाव है और सम्यग्दर्शन अविकारी भाव। सम्यग्दर्शन अमृत तुल्य है तो मिथ्यादर्शन विष तुल्य।

इस सम्यग्दर्शन के जैन आगमों में अनेक भेद-प्रभेद उपलब्ध होते हैं :-

उनमे मुख्य पांच भेद हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. सास्वादन, २. क्षायोपशमिक, ३. औपशमिक, ४. वेदक और ५. क्षायिक।

सास्वादन सम्यक्त्व—उपशम सम्यक्त्व से च्युत होता हुआ जीव जब तक मिथ्यात्व के स्थान को प्राप्त नहीं करता है, तब तक की स्थिति सास्वादन सम्यक्त्व नाम से कही जाती है।

२ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व—सम्यक्त्व मोहनीय के उदय से उदय मे आए हुए मिथ्यात्व मोहनीय एव अनन्तानुबन्धी चतुष्क का क्षय होने पर तथा उदय प्राप्त कर्म प्रकृतियो का उपशम होने से जीव का जो परिणाम विशेष होता है, वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। यह विशुद्धि ऐसी ही है जैसे जल प्रक्षालन से कोद्रव धान्य की मादक शक्ति कुछ नष्ट हो जाती है तो कुछ अवशिष्ट रह जाती है।

३. औपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा दर्शन मोह का त्रिक इस तरह कुल मिलाकर सप्त प्रकृतियाँ सम्यक्त्व गुण की विरोधी हैं। इन सातों प्रकृतियो के उपशम द्वारा होने वाले जीव की अवस्था विशेष का नाम औपशमिक सम्यक्त्व है। जैसे मल के नीचे जम जाने पर जल मे अपने आप स्वच्छता आ जाती है वैसे ही इस सम्यक्त्व से मिथ्यात्व कर्दम नीचे दब जाता है।

दशा को सम्यग्दर्शन कहते हैं और अशुद्ध अवस्था को मिथ्या-दर्शन कहा जाता है।

मिथ्यादर्शन आत्मा का विकारी भाव है और सम्यग्दर्शन अविकारी भाव। सम्यग्दर्शन अमृत तुल्य है तो मिथ्यादर्शन विष तुल्य।

इस सम्यग्दर्शन के जैन आगमों में अनेक भेद-प्रभेद उपलब्ध होते हैं :-

उनमे मुख्य पाँच भेद हैं जो निम्नलिखित हैं—

१. सास्वादन, २. क्षायोपशमिक, ३. औपशमिक, ४. वेदक और ५. क्षायिक।

सास्वादन सम्यक्त्व—उपशम सम्यक्त्व से च्युत होता हुआ जीव जब तक मिथ्यात्व के स्थान को प्राप्त नही करता है, तब तक की स्थिति सास्वादन सम्यक्त्व नाम से कही जाती है।

२ क्षायोपशमिक सम्यक्त्व—सम्यक्त्व मोहनीय के उदय से उदय मे आए हुए मिथ्यात्व मोहनीय एव अनन्तानुबन्धी चतुष्क का क्षय होने पर तथा उदय प्राप्त कर्म प्रकृतियो का उपशम होने से जीव का जो परिणाम विशेष होता है, वह क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहलाता है। यह विशुद्धि ऐसी ही है जैसे जल प्रक्षालन से कोद्रव धान्य की मादक शक्ति कुछ नष्ट हो जाती है तो कुछ अवशिष्ट रह जाती है।

३. औपशमिक सम्यक्त्व—अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ तथा दर्शन मोह का त्रिक इस तरह कुल मिलाकर सप्त प्रकृतियाँ सम्यक्त्व गुण की विरोधी हैं। इन सातों प्रकृतियों के उपशम द्वारा होने वाले जीव की अवस्था विशेष का नाम औपशमिक सम्यक्त्व है। जैसे मल के नीचे जम जाने पर जल मे अपने आप स्वच्छता आ जाती है वैसे ही इस सम्यक्त्व से मिथ्यात्व कर्दम नीचे दब जाता है।

निसर्गज सम्यक्त्व और अभिगमज सम्यक्त्व :

जाति स्मरण ज्ञान के योग से तथा गुरु आदि के उपदेश बिना स्वभाव से जो सम्यक्त्व के प्रति रुचि होती है उस तत्त्व श्रद्धा को निसर्गज सम्यक्त्व कहते हैं। तीर्थंकर भगवान तथा गुरु आदि के उपदेश से जो सम्यक्त्व होता है, उस सम्यक्त्व का नाम अधिगमज सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व के अन्य प्रकार से तीन भेद भी द्रष्टव्य हैं—

(१) **कारक सम्यक्त्व** जिस सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर इस जीव की इच्छा सम्यग्चारित्र के प्रति विशिष्ट रूप में जागृत हो, उस सम्यक्त्व का नाम कारक सम्यक्त्व है। इस प्रकार की सम्यक्त्व वाला जीव स्वयं चारित्र धर्म का पालन करता है तथा दूसरों से भी पालन करवाता है।

(२) **रोचक सम्यक्त्व :** सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर जीव की रुचि संयम-पालन की तरफ अवश्य होती है किन्तु चारित्रावरणीय कर्म के उदय से प्राणी संयम पालन नहीं कर सकता है, उसे रोचक सम्यक्त्व कहा जाता है।

(३) **दीपक सम्यक्त्व** स्वयं में तो सम्यग्दर्शन की ज्योति नहीं जग पाई है किन्तु दूसरों के अन्तःकरण में जागृत करने की क्षमता रखता है। वह आत्मा उपचार से दीपक स॰॰ ॰ से युक्त होता है।

'उत्तराध्ययन सूत्र' के २८वें अध्ययन . दश विध रुचियाँ निम्न प्रकार से बताई गई हैं—

१. **निसर्ग रुचि :** गुरु आदि के सदुपदेश बिना, स्वभाव से जाति स्मरण ज्ञान के योग से जो सम्यक्त्व के प्रति रुचि जागृत होती है, वह निसर्ग रुचि कहलाती है।

२ **उपदेश रुचि :** अरिहन्त वीतराग भगवान् तथा गुरु आदि के सदुपदेश से उत्पन्न होने वाली तत्त्व श्रद्धा, उपदेश रुचि के नाम से अभिहित है.

निसर्गज सम्यक्त्व और अभिगमज सम्यक्त्व :

जाति स्मरण ज्ञान के योग से तथा गुरु आदि के उपदेश के बिना स्वभाव से जो सम्यक्त्व के प्रति रुचि होती है उस तत्व श्रद्धा को निसर्गज सम्यक्त्व कहते हैं। तीर्थंकर भगवान तथा गुरु आदि के उपदेश से जो सम्यक्त्व होता है, उस सम्यक्त्व का नाम अधिगमज सम्यक्त्व है।

सम्यक्त्व के अन्य प्रकार से तीन भेद भी द्रष्टव्य हैं—

(१) **कारक सम्यक्त्व** जिस सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर इस जीव की इच्छा सम्यग्चारित्र के प्रति विशिष्ट रूप में जागृत हो, उस सम्यक्त्व का नाम कारक सम्यक्त्व है। इस प्रकार की सम्यक्त्व वाला जीव स्वयं चारित्र धर्म का पालन करता है तथा दूसरों से भी पालन करवाता है।

(२) **रोचक सम्यक्त्व :** सम्यक्त्व के प्राप्त होने पर जीव की रुचि संयम-पालन की तरफ अवश्य होती है किन्तु चारित्रावरणीय कर्म के उदय से प्राणी संयम पालन नहीं कर सकता है, उसे रोचक सम्यक्त्व कहा जाता है।

(३) **दीपक सम्यक्त्व** स्वयं में तो सम्यग्दर्शन की ज्योति नहीं जग पाई है किन्तु दूसरों के अन्त:करण में जागृत करने की क्षमता रखता है। वह आत्मा उपचार से दीपक स॰प॰ [illegible] से युक्त होता है।

'उत्तराध्ययन सूत्र' के २८वें अध्ययन . दश विध रुचियाँ निम्न प्रकार से बताई गई हैं—

१. **निसर्ग रुचि :** गुरु आदि के सदुपदेश बिना, स्वभाव से जाति स्मरण ज्ञान के योग से जो सम्यक्त्व के प्रति रुचि जागृत होती है, वह निसर्ग रुचि कहलाती है।

२. **उपदेश रुचि :** अरिहन्त वीतराग भगवान् तथा गुरु आदि के सदुपदेश से उत्पन्न होने वाली तत्व श्रद्धा, उपदेश रुचि के नाम से अभिहित है।

जिस प्रकार स्वर्णमय भूषणो में रत्न जड दिये जायं तो उनकी शोभा अत्यधिक बढ जाती है अथवा सहज सौन्दर्य युक्त शरीर सुन्दर वस्त्राभूषणो से निखर उठता है, ठीक इसी प्रकार सम्यक्त्व के भी कुछ भूषण हैं जिनसे सम्यग्दर्शन सुशोभित होता है वे भूषण इस प्रकार हैं—

१. **स्थिरता :** जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म पर स्वयं सुदर्शन एवं कामदेव की तरह दृढ रहना तथा दूसरों को भी मजबूत बनाने का प्रयास करना, इस प्रकार प्रियधर्मी के साथ दृढधर्मी होना सम्यक्त्व का पहला भूषण है।

२. **प्रभावना :** जिन शासन की प्रभावना करें। जिन मत म फैले हुए भ्रम का निराकरण कर जिन धर्म की लौकिक और लोकोत्तर महिमा को प्रकाशित करें, इस प्रकार की शुभ उत्साह भरी प्रवृतियो से भी सम्यग्दर्शन सुशोभित होता है।

३. **भक्ति :** तीसरे भूषण मे ये गुण सन्निहित हैं, गुरुजन की भक्ति, विनय व वैय्यावृत्य करना और ज्ञान, दर्शनचारित्र में जो हमसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ हो उनका आदर सत्कार करना इत्यादि।

४. **कौशल :** सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्ररुपित सिद्धान्तों का सागोपांग अधिकृत विशेष ज्ञान का नाम कौशल भूषण है। इसके द्वारा सम्यग्दर्शनी अन्य लोगों को भी धर्म मे स्थिर करने मे सक्षम होता है।

५. **तीर्थ सेवा :** सम्यग्दर्शन रूप स्वर्ण, सेवा के सौरभ से सुवासित होकर और भी देदीप्यमान बन जाता है। चतुर्विध संघ साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका की यथोचित सेवा करना।

ये पंचविध भूषण सम्यग्दर्शन मे एक नयी, अपूर्व चमक-दमक एव कान्ति उत्पन्न करते है।[1]

१—स्थैर्य प्रभावना भक्ति, कौशल जिन शासने।
तीर्थ सेवा च पञ्चास्य, भूषणानि प्रचक्षते ॥

जिस प्रकार स्वर्णमय भूषणों में रत्न जड दिये जायं तो उनकी शोभा अत्यधिक बढ जाती है अथवा सहज सौन्दर्य युक्त शरीर सुन्दर वस्त्राभूषणों से निखर उठता है, ठीक इसी प्रकार सम्यक्त्व के भी कुछ भूषण हैं जिनसे सम्यग्दर्शन सुशोभित होता है वे भूषण इस प्रकार हैं—

१. स्थिरता : जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म पर स्वयं सुदर्शन एवं कामदेव की तरह दृढ रहना तथा दूसरों को भी मजबूत बनाने का प्रयास करना, इस प्रकार प्रियधर्मी के साथ दृढधर्मी होना सम्यक्त्व का पहला भूषण है।

२. प्रभावना : जिन शासन की प्रभावना करें। जिन मत में फैले हुए भ्रम का निराकरण कर जिन धर्म की लौकिक और लोकोत्तर महिमा को प्रकाशित करें, इस प्रकार की शुभ उत्साह भरी प्रवृतियों से भी सम्यग्दर्शन सुशोभित होता है।

३. भक्ति : तीसरे भूषण मे ये गुण सन्निहित हैं, गुरुजन की भक्ति, विनय व वैय्यावृत्य करना और ज्ञान, दर्शनचारित्र में जो हमसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ हो उनका आदर सत्कार करना इत्यादि।

४. कौशल : सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्ररुपित सिद्धान्तों का सांगोपांग अधिकृत विशेष ज्ञान का नाम कौशल भूषण है। इसके द्वारा सम्यग्दर्शनी अन्य लोगों को भी धर्म में स्थिर करने में सक्षम होता है।

५. तीर्थ सेवा : सम्यग्दर्शन रूप स्वर्ण, सेवा के सौरभ से सुवासित होकर और भी देदीप्यमान बन जाता है। चतुर्विध संघ साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका की यथोचित सेवा करना।

ये पंचविध भूषण सम्यग्दर्शन मे एक नयी, अपूर्व चमक-दमक एव कान्ति उत्पन्न करते है।[1]

१—स्थैर्य प्रभावना भक्ति, कौशलं जिन शासने।
तीर्थ सेवा च पञ्चास्य, भूषणानि प्रच ॥

जिस प्रकार स्वर्णमय भूषणो मे रत्न जड दिये जायं तो उनकी शोभा अत्यधिक बढ जाती है अथवा सहज सौन्दर्य युक्त शरीर सुन्दर वस्त्राभूषणो से निखर उठता है, ठीक इसी प्रकार सम्यक्त्व के भी कुछ भूषण हैं जिनसे सम्यग्दर्शन सुशोभित होता है वे भूषण इस प्रकार हैं—

१. स्थिरता : जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म पर स्वयं सुदर्शन एव कामदेव की तरह दृढ रहना तथा दूसरो को भी मजबूत बनाने का प्रयास करना, इस प्रकार प्रियधर्मी के साथ दृढधर्मी होना सम्यक्त्व का पहला भूषण है।

२. प्रभावना : जिन शासन की प्रभावना करें। जिन मत में फैले हुए भ्रम का निराकरण कर जिन धर्म की लौकिक और लोकोत्तर महिमा को प्रकाशित करें, इस प्रकार की शुभ उत्साह भरी प्रवृतियों से भी सम्यग्दर्शन सुशोभित होता है।

३. भक्ति : तीसरे भूषण में ये गुण सन्निहित हैं, गुरुजन की भक्ति, विनय व वैय्यावृत्य करना और ज्ञान, दर्शनचारित्र में जो हमसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ हो उनका आदर सत्कार करना इत्यादि।

४. कौशल : सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्ररूपित सिद्धान्तों का सांगोपांग अधिकृत विशेष ज्ञान का नाम कौशल भूषण है। इसके द्वारा सम्यग्दर्शनी अन्य लोगो को भी धर्म में स्थिर करने मे सक्षम होता है।

५. तीर्थ सेवा : सम्यग्दर्शन रूप स्वर्ण, सेवा के सौरभ से सुवासित होकर और भी देदीप्यमान बन जाता है। चतुर्विध संघ साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका की यथोचित सेवा करना।

ये पचविध भूषण सम्यग्दर्शन मे एक नयी, अपूर्व चमक-दमक एव कान्ति उत्पन्न करते हैं।[1]

१—स्थैर्यं प्रभावना भक्ति, कौशल जिन शासने।
तीर्थ सेवा च पञ्चास्य, भूषणानि प्रचक्षते॥

जिस प्रकार स्वर्णमय भूषणो मे रत्न जड दिये जायं तो उनकी शोभा अत्यधिक बढ जाती है अथवा सहज सौन्दर्य युक्त शरीर सुन्दर वस्त्राभूषणो से निखर उठता है, ठीक इसी प्रकार सम्यक्त्व के भी कुछ भूषण हैं जिनसे सम्यग्दर्शन सुशोभित होता है वे भूषण इस प्रकार हैं—

१. स्थिरता : जिनेन्द्र भगवान के बताए हुए धर्म पर स्वयं सुदर्शन एव कामदेव की तरह दृढ रहना तथा दूसरो को भी मजबूत बनाने का प्रयास करना, इस प्रकार प्रियधर्मी के साथ दृढधर्मी होना सम्यक्त्व का पहला भूषण है।

२. प्रभावना : जिन शासन की प्रभावना करें। जिन मत में फैले हुए भ्रम का निराकरण कर जिन धर्म की लौकिक और लोकोत्तर महिमा को प्रकाशित करें, इस प्रकार की शुभ उत्साह भरी प्रवृत्तियों से भी सम्यग्दर्शन सुशोभित होता है।

३. भक्ति : तीसरे भूषण में ये गुण सन्निहित हैं, गुरुजन की भक्ति, विनय व वैय्यावृत्य करना और ज्ञान, दर्शनचारित्र में जो हमसे ज्येष्ठ व श्रेष्ठ हो उनका आदर सत्कार करना इत्यादि।

४. कौशल : सर्वज्ञ भगवान द्वारा प्ररुपित सिद्धान्तों का सांगोपांग अधिकृत विशेष ज्ञान का नाम कौशल भूषण है। इसके द्वारा सम्यग्दर्शनी अन्य लोगो को भी धर्म में स्थिर करने मे सक्षम होता है।

५. तीर्थ सेवा : सम्यग्दर्शन रूप स्वर्ण, सेवा के सौरभ से सुवासित होकर और भी देदीप्यमान बन जाता है। चतुर्विध संघ साधु-साध्वी, श्रावक, श्राविका की यथोचित सेवा करना।

ये पचविध भूषण सम्यग्दर्शन मे एक नयी, अपूर्व चमक-दमक एव कान्ति उत्पन्न करते हैं।[1]

१—स्थैर्य प्रभावना भक्ति, कौशल जिन शासने।
तीर्थ सेवा च पञ्चास्य, भूषणानि प्रचक्षते ॥

देव, दानव और मानव तरसते है, वहाँ सम्यग्दृष्टि उन्हे "काक कबीर सम मानता है।"[१] इस प्रकार की दृष्टि सम्यग्दर्शन के कारण हो है।

यह कोई आवश्यक नही कि सम्यग्दृष्टि प्राणी ग्रहवास का त्याग कर वनवास स्वीकार करे ही। परिवार को छोड अनगार बने ही। विषय कषाय को सर्वथा हेय समझकर भी वह कभी त्याग कर सकता है कभी नहीं भी। कर्मोदय से कदाचित् गृहस्थ जीवन में अनगार बने ही। कर्मोदय से कदाचित् गृहस्थ जीवन मे रहना पडे तो भी उसमे वह तन्मय नही बनता है।" वह भोगोपभोग के साधनों से उसी प्रकार अलग रहता है, जिस प्रकार जल मे जलज।"[२]

भरत चक्रवर्ती की तरह ससार मे रहता हुआ भी सम्यक्दृष्टि उस मे आसक्त नही बनता।

'आलोचना पाठ' मे कहा गया है—

"अहो समदृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर गत न्यारो रहे, ज्यू धाय खिलावे बाल।।"

धाय माता जैसे दूसरो के बच्चो को खिलाती है, पिलाती है, वह सब तरह से माता के सदृश ही बाहर का व्यवहार करती है वह उसके सुख मे सुखी व दुःख में दुःखी होती है किन्तु एक क्षण भर के लिए भी यह नहीं भूलती है कि यह बच्चा मेरा नही, बल्कि पराया है।

जैसे सूर्य का उदय सृष्टि को नया रूप एवं नयी कान्ति देता है, रात्रि के सघन अन्धकार को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है वैसे ही सम्यग्दर्शन का आलोक आत्मा में एक विशिष्ट जागृति प्रदान करता है।

सम्यग्दर्शन की ज्योति विचारो पर तो परिवर्तन लाती ही है किन्तु व्यवहार मे भी परिवर्तन किए बिना नही रहती। विचार

१—चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग।
काक बीट सम गिनत है, सम्यग्दृष्टि लोग।।

२—जहा पोम्म जले जायं, नोव लिप्पइ वारिणा। (उ. अ. २५ गा. २७)

देव, दानव और मानव तरसते है, वहाँ सम्यग्दृष्टि उन्हे "काक कबीर सम मानता है।"[१] इस प्रकार की दृष्टि सम्यग्दर्शन के कारण हो है।

यह कोई आवश्यक नही कि सम्यग्दृष्टि प्राणी ग्रहवास का त्याग कर वनवास स्वीकार करे ही। परिवार को छोड अनगार बने ही। विषय कषाय को सर्वथा हेय समझकर भी वह कभी त्याग कर सकता है कभी नहीं भी। कर्मोदय से कदाचित् गृहस्थ जीवन में अनगार बने ही। कर्मोदय से कदाचित् गृहस्थ जीवन मे रहना पडे तो भी उसमे वह तन्मय नही बनता है।" वह भोगोपभोग के साधनों से उसी प्रकार अलग रहता है, जिस प्रकार जल मे जलज।"[२]

भरत चक्रवर्ती की तरह ससार मे रहता हुआ भी सम्यक्दृष्टि उस मे आसक्त नही बनता।

'आलोचना पाठ' मे कहा गया है—

"अहो समदृष्टि जीवडा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल।
अन्तर गत न्यारो रहे, ज्यू' धाय खिलावे बाल॥"

धाय माता जैसे दूसरो के बच्चो को खिलाती है, पिलाती है, वह सब तरह से माता के सदृश ही बाहर का व्यवहार करती है वह उसके सुख मे सुखी व दुःख में दुःखी होती है किन्तु एक क्षण भर के लिए भी यह नहीं भूलती है कि यह बच्चा मेरा नही, बल्कि पराया है।

जैसे सूर्य का उदय सृष्टि को नया रूप एवं नयी कान्ति देता है, रात्रि के सघन अन्धकार को नष्ट-भ्रष्ट कर देता है वैसे ही सम्यग्दर्शन का आलोक आत्मा में एक विशिष्ट जागृति प्रदान करता है।

सम्यग्दर्शन की ज्योति विचारो पर तो परिवर्तन लाती ही है किन्तु व्यवहार मे भी परिवर्तन किए बिना नही रहती। विचार

१—चक्रवर्ती की सम्पदा, इन्द्र सरीखा भोग।
काक बीट सम गिनत है, सम्यग्दृष्टि लोग॥

२—जहा पोम्म जले जायं, नोव लिप्पइ वारिणा। (उ. अ. २५ गा. २७)

प्रत्युत्तर देते हुए विभीषण ने कहा—

"सुनहु पवनसुत ! रहनि हमारी ।
जिमि दसनन बिच, जीभ बिचारी ।।" (रामचरित मानस)

जिस प्रकार बत्तीस दांतो के बीच जिह्वा सावधान व सतर्क रहती है, इसी प्रकार मैं रावण की लका मे सतर्कता से रहता हूँ ।

इसी प्रकार सम्यग्दर्शी भी ससार मे सजग रहते हैं ।

सम्यग्दृष्टि और मिथ्या दृष्टि के जीवन की तुलना भ्रमर एवं मक्षिका के दृष्टान्त से की जा सकती है । भ्रमर और मक्षीका की तरह सम्यग्दृष्टि और मिथ्या दृष्टि का जीवन होता है ।

भ्रमर सुमनो पर मडराता है, रस पीता है, उसके सौरभमय वातावरण मे घूमता है किन्तु बन्धन मे नही पडता है । जब चाहता तब वह वहाँ से उड भी सकता है । किन्तु, मक्षिका की स्थिति कुछ निराली होती है। वह जिस श्लेष्म पर बैठती है उससे उडने की इच्छा करके भी वह उड़ नहीं सकती ।

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भ्रमर की तरह संसार में रहता हुआ भी जब चाहता है तब वह मोह-ममत्व से अलग हट सकता है और मिथ्यादृष्टि अन्तिम घडियो तक भी उसी मे उलझा रहता है ।

जैसे हजारो वर्षों तक भी जल के तल में रहने वाले सोने पर कोई हाथ नही डाल सकता है, वैसे ही ससारस्थ सम्यक्त्वी पाप-कर्दम से अलिप्त रहता है ।

"सम्मत्त-दंसी न करेइ पावं ।"
सम्यक् दृष्टि आत्मा पाप-कर्म नही करता है ।
"समझू शके पाप से, अण समझू हर्षन्त ।
वे लूखा वे चीकना इण विध कर्म बन्धन्त ।।"

संसार के प्राणी कोई सुखी नजर नही आते । सब का अपना-अपना रोना है। कोई धन के लिए रोता है, कोई जन के लिए तडफता है,

प्रत्युत्तर देते हुए विभीषण ने कहा—

"सुनहु पवनसुत ! रहनि हमारी ।
जिमि दसनन बिच, जीभ बिचारी ।।" (रामचरित मानस)

जिस प्रकार बत्तीस दातो के बीच जिह्वा सावधान व सतर्क रहती है, इसी प्रकार मैं रावण की लका मे सतर्कता से रहता हूँ ।

इसी प्रकार सम्यग्दर्शी भी ससार मे सजग रहते हैं ।

सम्यग्दृष्टि और मिथ्या दृष्टि के जीवन की तुलना भ्रमर एवं मक्षिका के दृष्टान्त से की जा सकती है । भ्रमर और मक्षीका की तरह सम्यग्दृष्टि और मिथ्या दृष्टि का जीवन होता है ।

भ्रमर सुमनो पर मडराता है, रस पीता है, उसके सौरभमय वातावरण मे घूमता है किन्तु बन्धन मे नही पडता है । जब चाहता तब वह वहाँ से उड भी सकता है । किन्तु, मक्षिका की स्थिति कुछ निराली होती है । वह जिस श्लेष्म पर बैठती है उससे उडने की इच्छा करके भी वह उड़ नहीं सकती ।

इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि भ्रमर की तरह संसार में रहता हुआ भी जब चाहता है तब वह मोह-ममत्व से अलग हट सकता है और मिथ्यादृष्टि अन्तिम घडियो तक भी उसी मे उलझा रहता है ।

जैसे हजारों वर्षों तक भी जल के तल में रहने वाले सोने पर कोई हाथ नही डाल सकता है, वैसे ही ससारस्थ सम्यक्त्वी पाप-कर्दम से अलिप्त रहता है ।

"सम्मत्त-दंसी न करेइ पावं ।"
सम्यक् दृष्टि आत्मा पाप-कर्म नही करता है ।
"समझू शके पाप से, अण समझू हर्षन्त ।
वे लूखा वे चीकना इण विध कर्म बन्धन्त ।।"

संसार के प्राणी कोई सुखी नजर नही आते । सब का अपना-अपना रोना है । कोई धन के लिए रोता है, कोई जन के लिए तडफता है,

पहचान लिया, अब उसमें एक नया ही परिवर्तन था। उसकी हीनता दीनता विलुप्त हो चुकी थी। सिंह के तेज से वह दीप्तिमान था। ज्ञात होते ही वह अपने आपको भेड नही, बल्कि शेर समझने लगा।

इसी प्रकार अपने स्वरूप को भूला मानव तीर्थंकर या सद्गुरु के प्रबोध से जब सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है तब वह भी अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को हृदयगम कर मस्ती से गुनगुनाने लगता है।

"मै हूँ उस नगरी का भूप, जहा नही होती छाया धूप।"

दृष्टि सुधरने ही सृष्टि भी सुधर जाती है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने ही उसे पता चलता है कि मेरी आत्मा अनन्त शक्ति का भडार है। वह देह और आत्मा को भिन्न-भिन्न तत्व मानने लगता है।

सम्यग्दर्शन आत्मा सासारिक सुखोपभोगो के विराट् साधनो को प्राप्त करके भी अहंकार नही करता किन्तु यह सोचता है कि कब वह सुसमय आए जब कि मैं इनसे परे हटूं। यह भी एक प्रकार का बन्धन है।

इसी प्रसग में मुझे एक कथा याद आ रही है—

एक बार ससुराल जाती हुई किसी लडकी के रुदन को सुन कर कोपाविष्ट हो अकबर बोल उठा—

"ये दामाद बहुत खराब होते हैं। बिचारी निर्दोष बालाओं को रुलाते हैं, अत इन्हें शूली पर चढादो।"

सभी सभासद अवाक् थे। बीरबल को यह कार्य सौंपा गया।

बीरबल विचक्षण था। उसने कुछ स्वर्णमय कुछ रजतमय और कुछ लोहे की शूलियां बनवादी।

कार्य समाप्ति पर राजा को वे शूलियां दिखाई गई। उन शूलियो को देख अकबर ने जिज्ञासा प्रकट की—

"यह भेद क्यों ?"

पहचान लिया, अब उसमें एक नया ही परिवर्तन था। उसकी हीनता दीनता विलुप्त हो चुकी थी। सिंह के तेज से वह दीप्तिमान था। ज्ञा होते ही वह अपने आपको भेड नही, वल्कि शेर समझने लगा।

इसी प्रकार अपने स्वरूप को भूला मानव तीर्थकर या सद्गु के प्रबोध से जब सम्यग्दर्शन प्राप्त कर लेता है तब वह भी अपने सच्चिदानन्द स्वरूप को हृदयगम कर मस्ती से गुनगुनाने लगता है।

"मै हूँ उस नगरी का भूप, जहा नही होती छाया धूप।"

दृष्टि सुधरने ही सृष्टि भी सुधर जाती है। सम्यग्दर्शन प्राप्त होने ही उसे पता चलता है कि मेरी आत्मा अनन्त शक्ति का भडार है। वह देह और आत्मा को भिन्न-भिन्न तत्व मानने लगता है।

सम्यग्दर्शन आत्मा सासारिक सुखोपभोगो के विराट् साधनो को प्राप्त करके भी अहंकार नही करता किन्तु यह सोचता है कि कब वह सुसमय आए जब कि मैं इनसे परे हंटू। यह भी एक प्रकार का बन्धन है।

इसी प्रसग में मुझे एक कथा याद आ रही है—

एक बार ससुराल जाती हुई किसी लडकी के रुदन को सुन कर कोपाविष्ट हो अकबर बोल उठा—

"ये दामाद बहुत खराब होते हैं। बिचारी निर्दोष बालाओं को रुलाते हैं, अत इन्हें शूली पर चढादो।"

सभी सभासद अवाक् थे। बीरबल को यह कार्य सौंपा गया।

बीरबल विचक्षण था। उसने कुछ स्वर्णमय कुछ रजतमय और कुछ लोहे की शूलियां बनवादी।

कार्य समाप्ति पर राजा को वे शूलियां दिखाई गईं। उन शूलियो को देख अकबर ने जिज्ञासा प्रकट की—

"यह भेद क्यों ?"

परीक्षार्थ राजा ने मुनि के स्थान के चारों तरफ कोयलों के छोटे-छोटे कण बिखेर दिये।

छोटे मुनि रात्रि को बाहर परठने को आते किन्तु यह सोच कर कि यहाँ सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो चुकी है। पुन भीतर लौट जाते।

इस परेशानी से आचार्यजी उबल पड़े। "कहाँ है जीवोत्पत्ति! लो मै जाता हूँ", जीवोत्पत्ति है तो मैं क्या करूँ। आवश्यक कार्यों की तो निवृत्ति करनी ही होगी।

आचार्य उन कोयलो को मर्दन करते निशंक भाव से तेज कदम रखते हुए गये और पुनः भीतर आगये।

गुप्तचरों से राजा ने समझ लिया कि वास्तव में मेरे स्वप्न के गादड़ ये आचार्य हैं और हस्तीरत्न तुल्य इनका यह विराट् शिष्य-परिवार है।

गुरु अभव्य है और शिष्य भव्य। आचार्य के पास बाह्य ज्ञान का तो भंडार भरा पड़ा है किन्तु सम्यग्दर्शन का अभाव है।

सम्यक्‌दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के जीवन में आकाश-पाताल सा अन्तर है। सम्यक् दृष्टि बुरे मे से अच्छाई चुनता है और मिथ्या दृष्टि अच्छाई मे से बुराई को ही ग्रहण करता है। यह इस कथा से सुस्पष्ट हो जायेगा—

एक बार अकबर ने बीरबल से कहा—
"मैंने एक स्वप्न देखा है।"

"वह स्वप्न कौनसा है?" बीरबल की विनम्र जिज्ञासा थी।

"मैं और तू कही घूमने निकले। रास्ते में एक अमृत कुण्ड और दूसरा गन्दगी से व्याप्त कुण्ड उपलब्ध हुए। तुम तो गन्दगी के कुण्ड में जा गिरे और मैं अमृत कुण्ड में।"

परीक्षार्थ राजा ने मुनि के स्थान के चारों तरफ कोयलों छोटे-छोटे कण बिखेर दिये।

छोटे मुनि रात्रि को बाहर परठने को आते किन्तु यह सो कर कि यहाँ सूक्ष्म जीवों की उत्पत्ति हो चुकी है। पुन भीतर लौ जाते।

इस परेशानी से आचार्यजी उबल पड़े। "कहाँ है जीवोत्पत्ति। लो मै जाता हूँ", जीवोत्पत्ति है तो मैं क्या करूँ। आवश्यक कार्यों की तो निवृत्ति करनी ही होगी।

आचार्य उन कोयलो को मर्दन करते निशंक भाव से तेज कदम रखते हुए गये और पुनः भीतर आगये।

गुप्तचरों से राजा ने समझ लिया कि वास्तव में मेरे स्वप्न के गादड़ ये आचार्य हैं और हस्तीरत्न तुल्य इनका यह विराट् शिष्य-परिवार है।

गुरु अभव्य है और शिष्य भव्य। आचार्य के पास बाह्य ज्ञान का तो भडार भरा पड़ा है किन्तु सम्यग्दर्शन का अभाव है।

सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के जीवन में आकाश-पाताल सा अन्तर है। सम्यक् दृष्टि बुरे मे से अच्छाई चुनता है और मिथ्या दृष्टि अच्छाई मे से बुराई को ही ग्रहण करता है। यह इस कथा से सुस्पष्ट हो जायेगा—

एक बार अकबर ने बीरबल से कहा—
"मैंने एक स्वप्न देखा है।"

"वह स्वप्न कौनसा है?" बीरबल की विनम्र जिज्ञासा थी।

"मैं और तू कहीं घूमने निकले। रास्ते में एक अमृत कुण्ड और दूसरा गन्दगी से व्याप्त कुण्ड उपलब्ध हुए। तुम तो गन्दगी के कुण्ड में जा गिरे और मैं अमृत कुण्ड में।"

आज का मोह ममत्व से भरा हुआ व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन इतना विकृत हो चुका है कि वह अपने आपको सही रूप में पहचान ही नही पाता है।

आज हमारी श्रद्धा इतनी विचलित हो चुकी है कि हम जगत् पूज्य, देवाधिदेव त्रिलोकीनाथ अरिहन्तो को छोडकर मिथ्यात्वी देवी-देवों के कुचक्र मे फस गए हैं। आज हमारी स्थिति ऐसी ही बन गई है जैसे कोई व्यक्ति क्षीर समुद्र के सुस्वादु, मधुर एवं सरस जल को छोडकर लवण समुद्र के क्षार-जल से अपनी तृषा शान्त करना चाहता हो। इससे अधिक और क्या मूर्खता हो सकती है ?

हम सद्गुरुओ से प्रबोधित हो इन जड परम्पराओं से उन्मुक्त बनें। पत्थर, पहाड, पीपल, नदी और नालो पर आसन जमाकर बैठने वाले देवी-देवो की पूजा करना छोड़ें। अन्ध विश्वास एवं जड़ परम्पराओं को झकझोर दें। कुप्रथाओं को तोड़कर फेंक दें।

जो रीति-रिवाज अच्छे हो वे अगर प्राचीन भी हों तो भी उन्हें स्वीकार करें और यदि आज की प्रचलित मान्यता भी बुरी हो तो उसे सहर्ष त्यागने को तत्पर रहें।

एक बार भी हमारी आत्मा ने मिथ्यात्व से हट कर सम्यक्त्व का रसास्वादन कर लिया तो फिर उसे किसी की प्रेरणा की आवश्यकता नहीं रहेगी। वह तो स्वय ही आध्यात्मिक रस का पान करने को उस गाडीवान की तरह लालायित रहेगा।

ससुराल पहुँचने पर किसी दामाद का गुलाबजामुन जैसे सुस्वादु पक्वान्न से स्वागत किया गया, पर साथ वाला गाडीवान ठमका। वह अपनी रखी शर्त पर जोर देकर कहने लगा "मुझे तो 'गुडराब' ही खिलाओ। मैं तो ये 'ऊंट के मींगने नहीं खाऊँगा। मुझे तो गुडराब" ही खिलाओ।"

"कल खिलाऊँगा।" विश्वास दिलाते जंवाई जी ने प्रत्युत्तर दिया।

आज का मोह ममत्व से भरा हुआ व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन इतना विकृत हो चुका है कि वह अपने आपको सही रूप में पहचान ही नही पाता है।

आज हमारी श्रद्धा इतनी विचलित हो चुकी है कि हम जगद् पूज्य, देवाधिदेव त्रिलोकीनाथ अरिहन्तो को छोडकर मिथ्यात्वी देवी-देवों के कुचक्र मे फस गए हैं। आज हमारी स्थिति ऐसी ही बन गई है जैसे कोई व्यक्ति क्षीर समुद्र के सुस्वादु, मधुर एवं सरस जल को छोडकर लवण समुद्र के क्षार-जल से अपनी तृषा शान्त करना चाहता हो। इससे अधिक और क्या मूर्खता हो सकती है ?

हम सद्गुरुओ से प्रबोधित हो इन जड परम्पराओं से उन्मुक्त बनें। पत्थर, पहाड, पोपल, नदी और नालो पर आसन जमाकर बैठने वाले देवी-देवो की पूजा करना छोड दें। अन्ध विश्वास एवं जड़ परम्पराओं को झकझोर दें। कुप्रथाओं को तोड़कर फेंक दें।

जो रीति-रिवाज अच्छे हो वे अगर प्राचीन भी हों तो भी उन्हें स्वीकार करें और यदि आज की प्रचलित मान्यता भी बुरी हो तो उसे सहर्ष त्यागने को तत्पर रहें।

एक बार भी हमारी आत्मा ने मिथ्यात्व से हट कर सम्यक्त्व का रसास्वादन कर लिया तो फिर उसे किसी की प्रेरणा की आवश्यकता नहीं रहेगी। वह तो स्वय ही आध्यात्मिक रस का पान करने को उस गाडीवान की तरह लालायित रहेगा।

ससुराल पहुँचने पर किसी दामाद का गुलाबजामुन जैसे सुस्वादु पक्वान्न से स्वागत किया गया, पर साथ वाला गाडीवान ठमका। वह अपनी रखी शर्त पर जोर देकर कहने लगा "मुझे तो 'गुडराब" ही खिलाओ। मैं तो ये 'ऊँट के मींगने नहीं खाऊँगा। मुझे तो गुडराब" ही खिलाओ।"

"कल खिलाऊँगा।" विश्वास दिलाते जंवाई जी ने प्रत्युत्तर [illegible] I।

बहुमूल्य बटुआ दिखाते हुए सेठ ने कहा—

"मुझे क्या डर है, पुण्य सब की रक्षा करता है।"

ठग कुछ समय साथ रहा। रात्रि को सेठ के सो जाने पर वह ठग उस सेठ के बहुमूल्य बटुए को खोजता। पर आश्चर्य वह बटुआ उसे कही नही मिला। कुछ समय साथ रहने के पश्चात् आश्चर्य चकित हो उस ठग ने कहा—

"सेठजी! मैं ठग हूँ और इसी उद्देश्य से तुम्हारे संग रहा था, किन्तु बताओ वह बटुआ तुम कहा रखते थे।"

"रात्रि को वह तुम्हारी जेब मे रहता था।" सेठ का प्रत्युत्तर था।

ठग के आश्चर्य का पारावार ही नही रहा। उसने सेठ से कहा—"तुम तो ठगो के भी ठग रहे।"

सेठ ने अपने आपको संभालते हुए बतलाया—"ठग हमेशा दूसरो की ही जेब संभाला करता है, अपनी नही।

हम उस ठग की तरह मूर्ख न बनें। सम्यग्दर्शन को भली भांति हृदयंगम कर सही मार्ग पर हमारे कदम यदि सतत अबाधरूप से गतिशील रहे तो हम अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

हाँ, तो आइये। सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सच्चे आत्म सुखो के उपभोक्ता बनें।

बहुमूल्य बटुआ दिखाते हुए सेठ ने कहा—

"मुझे क्या डर है, पुण्य सब की रक्षा करता है।"

ठग कुछ समय साथ रहा। रात्रि को सेठ के सो जाने पर वह ठग उस सेठ के बहुमूल्य बटुए को खोजता। पर आश्चर्य वह बटुआ उसे कहीं नहीं मिला। कुछ समय साथ रहने के पश्चात् आश्चर्य चकित हो उस ठग ने कहा—

"सेठजी! मैं ठग हूँ और इसी उद्देश्य से तुम्हारे संग रहा था, किन्तु बताओ वह बटुआ तुम कहा रखते थे।"

"रात्रि को वह तुम्हारी जेब में रहता था।" सेठ का प्रत्युत्तर था।

ठग के आश्चर्य का पारावार ही नहीं रहा। उसने सेठ से कहा—"तुम तो ठगों के भी ठग रहे।"

सेठ ने अपने आपको संभालते हुए बतलाया—"ठग हमेशा दूसरों की ही जेब संभाला करता है, अपनी नहीं।

हम उस ठग की तरह मूर्ख न बनें। सम्यग्दर्शन को भली भांति हृदयंगम कर सही मार्ग पर हमारे कदम यदि सतत अबाधरूप से गतिशील रहे तो हम अपने अभीष्ट लक्ष्य को प्राप्त कर सकेंगे।

हां, तो आइये। सम्यग्दर्शन को प्राप्त कर सच्चे आत्म सुखों के उपभोक्ता बनें।

ज्ञान एव दर्शन की सम्यक् आराधना के अनन्तर आज का य
तृतीय दिवस चरित्राराधाना का दिन है। आचरण के बिना को
ज्ञान कल्याणकर नही है। आज हम बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, गह
अध्ययन मनन एव चिन्तन करते हैं, पर यह कटु सत्य है कि हमा
व्यवहार मे करनी का प्रायः अभाव सा है। अतः आज का हमा
जीवन सुख-शान्ति से कोसो दूर है। वास्तविक कल्याण के लि
हम जीवन में सद्आचरण को अगीकृत करें, यही आज के दिव
का प्रयोजन है।

ज्ञान एव दर्शन की सम्यक् आराधना के अनन्तर आज का यह तृतीय दिवस चरित्राराधाना का दिन है। आचरण के बिना कोर ज्ञान कल्याणकर नही है। आज हम बड़ी-बड़ी बातें करते हैं, गह अध्ययन मनन एव चिन्तन करते हैं, पर यह कटु सत्य है कि हमा व्यवहार मे करनी का प्रायः अभाव सा है। अतः आज का हमा जीवन सुख-शान्ति से कोसो दूर है। वास्तविक कल्याण के लि हम जीवन में सदाचरण को अ गीकृत करें, यही आज के दिव का प्रयोजन है।

आपके पास भोजन से "सट" भरा हुआ है और आपको यह भी ज्ञान है कि खाने से भूख मिट सकती है किन्तु उसे खाया नहीं, तो आप ही कहिए आपकी भूख मिट तो जायगी ? नहीं, कभी नहीं मिट सकती है।

यह जानना उस सेठ की तरह होगा। कहा जाता है किसी सेठ के घर में एक चोर घुसा। सेठानी की निद्रा सहसा टूटी और सेठ को सावधान करती हुई वह बोली—

"पति देव ! घर में चोर घुसे हैं।"

"जानू हूँ" सेठ का प्रत्युत्तर था।"

"अरे ! तिजोरी वाले कमरे में प्रवेश कर लिया है।" सेठानी ने कांपते स्वर में कहा।

"जानू हूँ।"

"तिजोरी के ताले तोड़ दिये हैं।"

"जानू हूँ।"

"धन की गाठें बांध रहा है।"

"जानू हूँ।"

"अजी ! देखो, धन की गाठें लिए भाग रहा है।"

"जानू हूँ।"

आखिर हैरान होकर सेठानी ने तमककर रोब भरे शब्दों में सेठ से कहा—

"जानू जानू कर रया, माल गयो अति दूर।
सेठानी कहे सेठ ने, थारा ज्ञानपणा में धूर ॥"

बिना क्रिया के यह ज्ञान कितना हास्यास्पद है, यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं।

आपके पास भोजन से "सट" भरा हुआ है और आपको यह भी ज्ञान है कि खाने से भूख मिट सकती है किन्तु उसे खाया नहीं, तो आप ही कहिए आपकी भूख मिट तो जायगी ? नहीं, कभी नहीं मिट सकती है।

यह जानना उस सेठ की तरह होगा। कहा जाता है कि सेठ के घर मे एक चोर घुसा। सेठानी की निद्रा सहसा टूटी और से को सावधान करती हुई वह बोली—

"पति देव ! घर में चोर घुसे हैं।"

"जानू हूँ" सेठ का प्रत्युत्तर था।"

"अरे ! तिजोरी वाले कमरे में प्रवेश कर लिया है।" सेठानी ने कांपते स्वर में कहा।

"जानू हूँ।"

"तिजोरी के ताले तोड़ दिये हैं।"

"जानू हूँ।"

"धन की गाठें बांध रहा है।"

"जानू हूँ।"

"अजी ! देखो, धन की गाठें लिए भाग रहा है।"

"जानू हूँ।"

आखिर हैरान होकर सेठानी ने तमककर रोष भरे शब्दों में सेठ से कहा—

"जानू जानू कर रघा, माल गयो अति दूर।
सेठानो कहे सेठ ने, थारा जाणपणा में धूर ॥"

बिना क्रिया के यह ज्ञान कितना हास्यास्पद है, यह कहने की कोई आवश्यकता नहीं।

रात दिन मधुर पक्वान्नों में संलग्न रहने वाले चम्मच को क्या ज्ञात कि यह मिष्ठान्न है। मिष्ठान्न का सच्चा आनन्दानुभव, तो खाने वाला ही ले सकता है।

अहर्निश पुस्तकों की सजावट व सभाल में सतत सलग्न चपरासी को क्या ज्ञान कि इन पुस्तकों में अथाह ज्ञान-विज्ञान का सिन्धु लहरा रहा है, इसकी सच्ची आनन्दानुभूति तो होती है तन्मयता से पढ़ने वाले सक्रिय पाठक को।

"सा विद्या या विमुक्तये।"

विद्या वही है जो बन्धन से मुक्त कराती है। कोरे अक्षरज्ञान को हमने कभी महत्व नहीं दिया। साक्षरता मे सदाचरण की अगर सुवास नही है तो "साक्षरा" पलटकर "राक्षसा" हो सकते हैं, परन्तु सुसस्कारो से अनुप्राणित साक्षर सरस हो जाता है जो पलट कर भी सरस ही रहता है। इस प्रसग पर एक पौराणिक प्रसग मुझे याद आता है।

एक बार गुरु द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर आदि सभी विद्यार्थियों को पाठ दिया—

"सत्य वद।"
क्षमां चर।"
"विनय आचर।"

दूसरे दिन सभी छात्रो से पाठ पूछे जाने पर सबने तत्काल सुना दिया, किन्तु युधिष्ठिर चुप रहे।

रोष प्रकट करते हुए गुरु ने कहा—"तुम सबसे बड़े और तुम्हें ही पाठ याद नही।"

"नही, आचार्य।"

सखेद युधिष्ठिर का विनम्र उत्तर था।

रात दिन मधुर पक्वान्नों में संलग्न रहने वाले चम्मच को क्या ज्ञान कि यह मिष्ठान्न है। मिष्ठान्न का सच्चा आनन्दानुभव तो खाने वाला ही ले सकता है।

अहर्निश पुस्तकों की सजावट व संभाल में सतत संलग्न चपरासी को क्या ज्ञान कि इन पुस्तकों में अथाह ज्ञान-विज्ञान का सिन्धु लहरा रहा है, इसकी सच्ची आनन्दानुभूति तो होती है तन्मयता से पढ़ने वाले सक्रिय पाठक को।

"सा विद्या या विमुक्तये।"

विद्या वही है जो बन्धन से मुक्त कराती है। कोरे अक्षरज्ञान को हमने कभी महत्त्व नहीं दिया। साक्षरता में सदाचरण की अगर सुवास नहीं है तो "साक्षरा" पलटकर "राक्षसा" हो सकते हैं, परन्तु सुसंस्कारों से अनुप्राणित साक्षर सरस हो जाता है जो पलट कर भी सरस ही रहता है। इस प्रसंग पर एक पौराणिक प्रसंग मुझे याद आता है।

एक बार गुरु द्रोणाचार्य ने युधिष्ठिर आदि सभी विद्यार्थियों को पाठ दिया—

"सत्यं वद।"
क्षमां चर।"
"विनय आचर।"

दूसरे दिन सभी छात्रों से पाठ पूछे जाने पर सबने तत्काल सुना दिया, किन्तु युधिष्ठिर चुप रहे।

रोष प्रकट करते हुए गुरु ने कहा—"तुम सबसे बड़े और तुम्हें ही पाठ याद नहीं।"

"नहीं, आचार्य।"

सखेद युधिष्ठिर का विनम्र उत्तर था।

ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं। जब कभी भी आत्मा बन्धन मु
बनेगी तो ज्ञान से ही बनेगी।

कुछ दर्शन ऐसे भी हैं जो केवल क्रिया से ही मुक्ति स्वीक
करते है। उनका कथन है—

"क्रियया मुक्ति."
"ज्ञान भारः क्रिया विना।"

क्रिया के बिना ज्ञान भार भूत है। मुक्ति का एकमात्र कार
क्रिया ही है।

हमारा विस्तृत समन्वय प्रधान जैन दर्शन का यह वज्र घ
है कि—

"मुक्ति जब कभी भी होगी तब ज्ञान और क्रिया के सम
से ही होगी। कथनी और करनी एक होनी चाहिए। कथनी
करनी का मेल ही भव बन्धन से आत्मा को छुटकारा दिलाता है

उस वृक्ष से लाभ ही क्या जो समय पर मधुर एव पौष्टि
फल प्रदान नहीं करता, ठीक इसी प्रकार उस ज्ञान से फायदा
क्या? जो सदाचार का विकास नहीं करता।

यों तो रावण भी अपने समय का सुप्रसिद्ध वेदावज्ञाता, म
नीतिज्ञ एवं उद्भट पंडित था। पर इतिहास साक्षी है कि सदा
के अभाव मे रावण ने अपना भी अहित किया और साथ-साथ दू
का भी।

जैसे प्रभात की वेला मे कमल खिल उठते है, वैसे ही ज्ञान
सूर्योदय होने पर सदाचार का कमल खिलना ही चाहिए इसी मे
की सार्थकता है।

तलवार की कीमत म्यान से नहीं, बल्कि धार से होती
उसी प्रकार मनुष्य की महत्ता शरीर से नहीं, चरित्र-बल से है।

"ज्ञान से पदार्थों का स्वरूप जाना जाता है, दर्शन से श्रद्धा होती है, चारित्र से कर्मों का विरोध होता है और तप से आत्मा निर्मल होती है।[1]"

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्म-प्रदेशो पर आगत नवीन कर्मों को रोकने वाला सवर चारित्र धर्म है। यह संवर शास्त्र मे सत्तावन प्रकार का बताया गया है जो इस प्रकार है—

पाच समिति, तीन गुप्ति, दस यति धर्म, बावीस परिषह, बारह भावना और पाच चारित्र।

नवीन कर्मों का आगमन जबतक अवरुद्ध न होगा तबतक मुक्ति कहा ? पर आत्मा के साथ जो प्राचीन कर्म लगे हुए हैं उनको भी तो क्षय करना आवश्यक है। जैसे तडागस्थजल सूर्य के प्रखर ताप से सूख जाता है, उसी प्रकार आत्मप्रदेश मे अवस्थित प्राचीन कर्म-राशि तपस्तेज से नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। यह तप ही निर्जरा रूप धर्म है जो शास्त्रो मे द्वादश प्रकार का बताया गया है।

चारित्र शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ पर भी हमें ध्यान देना होगा—

"चयस्य रिक्तीकरणं चारित्रम्।"

अनादि अनन्त काल से आत्मा पर लगे हुए कर्म मल से अपना पिंड छुडाना चारित्र है।

इसी बात को शास्त्रकारो ने यों कहा है—

एयं चयरित्त कर, चारित्त होई आहियं। (उ० २८।३३॥)

अर्थात्—दीर्घद्रष्टा, सर्वहित कामी, त्रिलोकनाथ श्री भगवान महावीर ने द्विविध चारित्र धर्म प्ररूपित किया है—

---

१. नाणेण जाणइ भावे, दसणेण य सद्दहे। चरित्तेण निगिण्हाई, तवेण परिसुज्झइ (उ० २८-३५)

"ज्ञान से पदार्थों का स्वरूप जाना जाता है, दर्शन से श्रद्धा होती है, चारित्र से कर्मों का विरोध होता है और तप से आत्मा निर्मल होती है।"[1]

मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग के निमित्त से आत्म-प्रदेशो पर आगत नवीन कर्मों को रोकने वाला संवर चारित्र धर्म है। यह संवर शास्त्र मे सत्तावन प्रकार का बताया गया है जो इस प्रकार है—

पाच समिति, तीन गुप्ति, दस यति धर्म, बावीस परिषह, बारह भावना और पाच चारित्र।

नवीन कर्मों का आगमन जबतक अवरुद्ध न होगा तबतक मुक्ति कहा ? पर आत्मा के साथ जो प्राचीन कर्म लगे हुए हैं उनको भी तो क्षय करना आवश्यक है। जैसे तडागस्थजल सूर्य के प्रखर ताप से सूख जाता है, उसी प्रकार आत्मप्रदेश मे अवस्थित प्राचीन कर्म-राशि तपस्तेज से नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। यह तप ही निर्जरा रूप धर्म है जो शास्त्रो मे द्वादश प्रकार का बताया गया है।

चारित्र शब्द की व्युत्पत्ति और अर्थ पर भी हमें ध्यान देना होगा—

"चयस्य रिक्तीकरणं चारित्रम्।"

अनादि अनन्त काल से आत्मा पर लगे हुए कर्म मल से अपना पिंड छुडाना चारित्र है।

इसी बात को शास्त्रकारो ने यो कहा है—

एयं चयरित्त कर, चारित होई आहियं। (उ० २८।३३॥)

अर्थात्—दीर्घद्रष्टा, सर्वहित कामी, त्रिलोकनाथ श्री भगवान महावीर ने द्विविध चारित्र धर्म प्ररूपित किया है—

१. नाणेण जाणइ भावे, दसणेण य सद्दहे। चरित्तेण निगिण्हाई, तवेण परिसुज्झइ (उ० २८-३५)

हमारे प्राचीन आगमके स्वर्णिम पृष्ठो पर चमकने वाले कुछ आगार-धर्मी श्रावकों के सुन्दर चरित्र के ये चिरन्तन प्रसंग कितने मन भावक हैं—

सामायिक चारित्र की निर्मलतम साधना के रूप में सुश्रावक पुणिया हम सबके पथ प्रदर्शक हैं। अपने नरक गति को टालने के लोभ में मगध पति श्रेणिक भी एक दिन पुणिया श्रावक की सामायिक खरीदने हेतु उसकी सेवामे उपस्थित हुए थे। पर वह सामायिक खरीदी नही जा सकी। भगवान महावीर ने उस सामायिक की दलाली मे बावन सोने की डूगरिया बताई थी। उसकी सम्पूर्ण कीमत चुका देना मगध पति के लिये भी असम्भव था। सत्य है शुद्ध चारित्र-पालन कोटि-कोटि स्वर्ण राशि से भी बढकर है, चढकर है।

'उपासक दशांग सूत्र' में आनन्द, कामदेव, कुंडकौलिक, सकडाल, महाशतक आदि का जीवन परिचय मिलता है। ये प्रभु महावीर के विशिष्ट श्रावक हुए हैं। देवों ने आकर इनकी परीक्षाएं ली हैं और ये श्रावक इन परीक्षाओ में उत्तीर्ण हुए हैं। उनमें से कामदेव का जीवन पढते ही सहसा एक बार रोमाच हो आता है।

ध्यानस्थ पौषधशाला मे ठहरे हुए कामदेव के समक्ष एक मिथ्यात्वी देव ने पिशाच रूप मे प्रकट होकर कहा—

"ह्री श्री, से हीन, मरने का इच्छुक, अय कामदेव! जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररूपित वीतराग धर्म को छोड दो, नही, तो आज मैं तुम्हें प्राणो से रहित कर दूंगा।

किन्तु, कामदेव अपने चरित्र मे सुदृढ रहे। "तेरे शरीर के इस चमकती तलवार से खण्ड-खण्ड कर दूंगा। मानजा, धर्म छोड दे।" देव का कथन था।

फिर भी कामदेव घबराये नही। देव के इस भयकराति-भयंकर उपसर्ग में भी वे मेरू पर्वत की तरह अकम्प रहे।

हमारे प्राचीन आगमके स्वर्णिम पृष्ठो पर चमकने वाले कुछ आगार-धर्मी श्रावकों के सुन्दर चरित्र के ये चिरन्तन प्रसंग कितने मन भावक हैं—

सामायिक चारित्र की निर्मलतम साधना के रूप में सुश्रावक पुणिया हम सबके पथ प्रदर्शक हैं। अपने नरक गति को टालने के लोभ में मगध पति श्रेणिक भी एक दिन पुणिया श्रावक की सामायिक खरीदने हेतु उसकी सेवामे उपस्थित हुए थे। पर वह सामायिक खरीदी नही जा सकी। भगवान महावीर ने उस सामायिक की दलाली मे बावन सोने की डूगरिया बताई थी। उसकी सम्पूर्ण कीमत चुका देना मगध पति के लिये भी असम्भव था। सत्य है शुद्ध चारित्र-पालन कोटि-कोटि स्वर्ण राशि से भी बढकर है, चढकर है।

'उपासक दशांग सूत्र' में आनन्द, कामदेव, कुंडकौलिक, सकडाल, महाशतक आदि का जीवन परिचय मिलता है। ये प्रभु महावीर के विशिष्ट श्रावक हुए हैं। देवों ने आकर इनकी परीक्षाएं ली हैं और ये श्रावक इन परीक्षाओ में उत्तीर्ण हुए हैं। उनमें से कामदेव का जीवन पढते ही सहसा एक वार रोमाच हो आता है।

ध्यानस्थ पौषधशाला मे ठहरे हुए कामदेव के समक्ष एक मिथ्यात्वी देव ने पिशाच रूप मे प्रकट होकर कहा—

"ह्री श्री, से हीन, मरने का इच्छुक, अय कामदेव ! जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्ररूपित वीतराग धर्म को छोड दो, नही, तो आज मैं तुम्हें प्राणो से रहित कर दूंगा।

किन्तु, कामदेव अपने चरित्र मे सुदृढ रहे। "तेरे शरीर के इस चमकती तलवार से खण्ड-खण्ड कर दूंगा। मानजा, धर्म छोड दे।" देव का कथन था।

फिर भी कामदेव घबराये नही। देव के इस भयकराति-भयंकर उपसर्ग में भी वे मेरू पर्वत की तरह अकम्प रहे।

अर्थात् जिस व्यक्ति का मन धर्म में लगा रहता है, देवता भी उसे नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार गृहस्थ पांच अणुव्रतो के माध्यम से शिवत्व की सम्यक् आराधना कर अपने धर्म को फलीभूत करते हैं।

चारित्र धर्म का दूसरा स्वरूप है अणगार धर्म। अणगार अर्थात् छूट रहित धर्म। इस धर्म का आराधक साधक पंचमहाव्रतधारी होता है। साराश यह है कि वह सर्वथा, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और ममत्व बुद्धि से परे हटकर इन्द्रिय, कषाय, मन एवं आत्म दमन मे निरत रहते हैं। यह अणगार चारित्र है। अणगार के पॉच महाव्रत होते है जिनका अत्यन्त संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

१. अहिसा महाव्रत :—जो सर्वथा प्राण (विकलेन्द्रिय) भूत (वनस्पति) जीव (पचेन्द्रिय) और सत्व (चार स्थावर) की मन, वचन और काया से स्वयं हिसा करते नही, दूसरो से करवाते नहीं और करने वाले का अनुमोदन करते नही।

२. सत्य महाव्रत :—लोक मे निन्दित और अविश्वास के प्रमुख कारण इस असत्य का त्रिकरण, त्रियोग से त्याग करना, दूसरा महाव्रत है।

३. अचौर्य महाव्रत :—जिस वस्तु का जो स्वामी है, उस वस्तु को उस स्वामी की बिना अनुमति लेना अदत्त है। साधु इस अदत्त का तीनकरण तीन योग से त्याग करते है।

४. ब्रह्मचर्य महाव्रत :—साधुजी और साध्वीजी महाराज
महाव्रत मे सर्वथा प्रकार से मैथुन का परित्याग कर
ब्रह्मचर्य का परिपालन करते हुए इस दुष्कर तेरे शरीर के इस
करते हैं। निजा, धर्म छोड़ दे।"

५. अपरिग्रह महाव्रत :—अपरिग्रह से
महाव्रत है। परिग्रह अनर्थ का मूल है। सुख का इस भयकराति-
बुद्धि है। अत सयंमी साधक बाह्य पदार्थों का उप रहे।

अर्थात् जिस व्यक्ति का मन धर्म में लगा रहता है, देवता भी उसे नमस्कार करते हैं।

इस प्रकार गृहस्थ पांच अणुव्रतो के माध्यम से शिवत्व की सम्यक् आराधना कर अपने धर्म को फलीभूत करते हैं।

चारित्र धर्म का दूसरा स्वरूप है अणगार धर्म। अणगार अर्थात् छूट रहित धर्म। इस धर्म का आराधक साधक पंचमहाव्रतधारी होता है। साराश यह है कि वह सर्वथा, हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और ममत्व बुद्धि से परे हटकर इन्द्रिय, कषाय, मन एवं आत्म दमन मे निरत रहते हैं। यह अणगार चारित्र है। अणगार के पाँच महाव्रत होते है जिनका अत्यन्त संक्षिप्त स्वरूप इस प्रकार है—

१. अहिंसा महाव्रत :—जो सर्वथा प्राण (विकलेन्द्रिय) भूत (वनस्पति) जीव (पचेन्द्रिय) और सत्व (चार स्थावर) की मन वचन और काया से स्वयं हिंसा करते नही, दूसरो से करवाते नहीं और करने वाले का अनुमोदन करते नही।

२. सत्य महाव्रत :—लोक मे निन्दित और अविश्वास के प्रमुख कारण इस असत्य का त्रिकरण, त्रियोग से त्याग करना, दूसरा महाव्रत है।

३. अचौर्य महाव्रत :—जिस वस्तु का जो स्वामी है, उस वस्तु को उस स्वामी की बिना अनुमति लेना अदत्त है। साधु इस अदत्त का तीनकरण तीन योग से त्याग करते है।

४. ब्रह्मचर्य महाव्रत :—साधुजी और साध्वीजी महाराज महाव्रत मे सर्वथा प्रकार से मैथुन का परित्याग कर ब्रह्मचर्य का परिपालन करते हुए इस दुष्कर तैरे शरीर के इस करते हैं। नजा, धर्म छोड़ दे।"

५. अपरिग्रह महाव्रत :—अपरिग्रह महाव्रत है। परिग्रह अनर्थ का मूल है। सुख का इस भयकराति- बुद्धि है। अत संयमी साधक बाह्य पदार्थों का उप रहे।

धन्य है ये महामुनि। जिनकी क्षमा, सहन-शीलता अनुपम है। विश्व के इतिहास में उनका नाम सदा-सदा के लिये चमकता रहेगा।

ये मुनि और कोई नही, अन्तकृतदशांग' सूत्र के स्वर्णिम पृष्ठो पर चमकने वाले क्षमावीर महामुनि अर्जुनमाली हैं।

बिना आचरण कोरा शुष्क ज्ञान उपहासास्पद है। इसका प्रभाव नगण्य और जघन्य होता है। किसी विद्वान् का यह सार भूत एवं अनुभूति पूर्ण कथन सर्वथा समुचित है :—

"प्रभाव आचरण का ही पडता है, विद्वत्ता का नहीं।"
"आचरण का बिन्दु, विवेचन के सिन्धु से भी श्रेष्ठ है।"

"एक करण करना, सो टन कहने से अच्छा है।"

एक प्रचारक जी एक सार्वजनिक सभा मे अहिंसा पर अपना अभिमत प्रकट कर रहे थे। वक्ता महोदय ने विभिन्न धर्मों के प्रभावक उदाहरणों से यह सुस्पष्ट सिद्ध करके बताया कि—

"अहिंसा परम धर्म है।"

उन्होने यह भी बताया कि पश्चिम से भी यह प्रतिध्वनि आई है—"Live and let live" अर्थात् 'जीओ और जीने दो।'

उसके भाषण से सभास्थल हर्ष विभोर था। जनता मंत्रमुग्ध बन उनकी तरफ आकृष्ट थी। करतल ध्वनि से सभा-भवन गूंज पड़ा।

महाशय जी का वदन बोलते-बोलते पसीने से तरबतर हो गया। जेब मे हाथ डालकर रुमाल निकाला। असावधानी से उसके संग दो अंडे बाहर आ गिरे, देखते ही सभा चकित हो गई। यह क्या तमाशा है? अहिंसा का इतना जबर्दस्त विश्लेषण करने वाले वक्ता का जो प्रभाव था, वह कपूर की तरह उड गया। वक्ता महोदय की जो उस समय स्थिति हुई वह तस्वीर खीचने लायक थी।

धन्य है ये महामुनि । जिनकी क्षमा, सहन-शीलता अनुपम है। विश्व के इतिहास में उनका नाम सदा-सदा के लिये चमकता रहेगा।

ये मुनि और कोई नही, अन्तकृतदशांग' सूत्र के स्वर्णिम पृष्ठो पर चमकने वाले क्षमावीर महामुनि अर्जुनमाली हैं।

बिना आचरण कोरा शुष्क ज्ञान उपहासास्पद है। इसका प्रभाव नगण्य और जघन्य होता है। किसी विद्वान् का यह सार भूत एवं अनुभूति पूर्ण कथन सर्वथा समुचित है :—

"प्रभाव आचरण का ही पडता है, विद्वत्ता का नही।"

"आचरण का बिन्दु, विवेचन के सिन्धु से भी श्रेष्ठ है।"

"एक करण करना, सो टन कहने से अच्छा है।"

एक प्रचारक जी एक सार्वजनिक सभा मे अहिंसा पर अपना अभिमत प्रकट कर रहे थे। वक्ता महोदय ने विभिन्न धर्मों के प्रभावक उदाहरणों से यह सुस्पष्ट सिद्ध करके बताया कि—

"अहिंसा परम धर्म है।"

उन्होने यह भी बताया कि पश्चिम से भी यह प्रतिध्वनि आई है—"Live and let live" अर्थात् 'जीओ और जीने दो।'

उसके भाषण से सभास्थल हर्ष विभोर था। जनता मंत्रमुग्ध बन उनकी तरफ आकृष्ट थी। करतल ध्वनि से सभा-भवन गूंज पड़ा।

महाशय जी का वदन बोलते-बोलते पसीने से तरबतर हो गया। जेब मे हाथ डालकर रुमाल निकाला। असावधानी से उसके संग दो अंडे बाहर आ गिरे, देखते ही सभा चकित हो गई। यह क्या तमाशा है? अहिंसा का इतना जबर्दस्त विश्लेषण करने वाले वक्ता का जो प्रभाव था, वह कपूर की तरह उड गया। वक्ता महोदय की जो उस समय स्थिति हुई वह तस्वीर खीचने लायक थी।

दुरुपयोग है। पढकर जहाँ विनम्र बनना चाहिये, वहाँ उसने अभिमान कर अपने चारित्र को खोया। कोरे ज्ञान बघारने वालों की दुनिया में ऐसी ही अपकीर्ति होती है।

चारित्र पारसमणि से भी बढ-चढकर है। चारित्र बल से ही अर्जुन माली जैसे हत्यारे को सुदर्शन ने महान् बना दिया था।

त्यागी-वैरागी जम्बू के आदर्श चारित्र के प्रभाव से प्रभव जैसा कुख्यात निन्दित चोर भी महान् बन गया, जो आगे चलकर जैन शासन के महान् ज्योतिर्धर तृतीय प्रभावक पट्टधर आचार्य बने।

चारित्र सच्चा कोहिनूर हीरा है। इसकी चमक के समक्ष अन्य सभी चमकीले पदार्थ निष्प्रभ हो जाते हैं। इसको खोना अपना सर्वस्व खोना है। इस विषय में अंग्रेजी के एक विद्वान ने भी कहा है—

"अगर धन खोया तो कुछ नहीं खोया, अगर स्वास्थ्य खोया तो कुछ खोया किन्तु अगर चारित्र खोया तो सब कुछ खोया।"[1]

क्योंकि खोया हुआ धन तो कठोर परिश्रम से पुन. आसानी से अर्जित किया जा सकता है, विनष्ट स्वास्थ्य भी औषध एवं पथ्य आदि सेवन से पुन. प्राप्त हो सकता है किन्तु जिस जीव का एक बार चारित्र भ्रष्ट हो चुका है, उस नष्ट चारित्र को पुनः प्राप्त करना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

एक तो वह प्राणी है जिसने कभी सत्चारित्र में प्रवृत्ति ही नहीं की। जैसे नवग्रैवेयक जाति के देव मन्द कषायी होने पर भी चारित्रावरणीय कर्म के उदय से कभी भी सत् चारित्र में पराक्रम कर ही नहीं सकते।

किन्तु दूसरे वे जीव हैं, जो सदाचार से कदाचार में प्रवृत्त होते हैं, जैसे पुण्डरीक और कुण्डरीक के जीवन से हम समझ सकते हैं।

१—If wealth is lost, nothing is lost.
If health is lost, something is lost.
If character is lost, every thing is lost.

दुरुपयोग है। पढ़कर जहाँ विनम्र बनना चाहिये, वहाँ उसने अभिमान कर अपने चारित्र को खोया। कोरे ज्ञान बघारने वालों की दुनिया ऐसी ही अपकीर्ति होती है।

चारित्र पारसमणि से भी बढ़-चढ़कर है। चारित्र बल से ही अर्जुन माली जैसे हत्यारे को सुदर्शन ने महान् बना दिया था।

त्यागी-वैरागी जम्बू के आदर्श चारित्र के प्रभाव से प्रभव जैसा कुख्यात निन्दित चोर भी महान् बन गया, जो आगे चलकर जैन शासन के महान् ज्योतिर्धर तृतीय प्रभावक पट्टधर आचार्य बने।

चारित्र सच्चा कोहिनूर हीरा है। इसकी चमक के समक्ष अन्य सभी चमकीले पदार्थ निष्प्रभ हो जाते हैं। इसको खोना अपना सर्वस्व खोना है। इस विषय मे अंग्रेजी के एक विद्वान ने भी कहा है—

"अगर धन खोया तो कुछ नही खोया, अगर स्वास्थ्य खोया तो कुछ खोया किन्तु अगर चारित्र खोया तो सब कुछ खोया।"[1]

क्योंकि खोया हुआ धन तो कठोर परिश्रम से पुनः आसानी से अर्जित किया जा सकता है, विनष्ट स्वास्थ्य भी औषध एवं पथ्य आदि सेवन से पुनः प्राप्त हो सकता है किन्तु जिस जीव का एक बार चारित्र भ्रष्ट हो चुका है, उस नष्ट चारित्र को पुनः प्राप्त करना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है।

एक तो वह प्राणी है जिसने कभी सत्चारित्र में प्रवृत्ति ही नही की। जैसे नवग्रैवेयक जाति के देव मन्द कषायी होने पर भी चारित्रावरणीय कर्म के उदय से कभी भी सत् चारित्र मे पराक्रम कर ही नही सकते।

किन्तु दूसरे वे जीव हैं, जो सदाचार से कदाचार मे प्रवृत्त होते हैं, जैसे पुण्डरीक और कुण्डरीक के जीवन से हम समझ सकते हैं।

१—If wealth is lost, nothing is lost.
If health is lost, something is lost.
If character is lost, every thing is

नध न न जमीन, न आदर न सम्मान । वे जीवन से तग आकर मरने को तैयार हो जाते हैं, किन्तु ऐसी विकट वेला मे भी उन्हे एक सहारा मिलता है। गिरती हुई दीवार को सुरक्षित रखने का एक टेका मिलता है। वह थे पच महाव्रत धारी एक महान् सन्त । उनकी वाणी थी—

'मत मरो'

इस प्रकार मरने से दुख बढता है, घटता नही । चिरकाल तक संसार परिभ्रमण करना पडता है ।

उस पर सतवाणी का महान् प्रभाव हुआ , चारित्र के क्षेत्र मे उन्होने अपने कदम आगे बढाये । वे शुद्ध सयमाचरण करते हुए नानाविध लब्धिया प्राप्त कर गये ।

घोर और कठोर तप साधना से देव भी उनके अधीन होगये जिसका विस्तृत विवरण 'उत्तराध्ययन सूत्र' के बारहवे अध्याय मे उअकित है।

चारित्र के द्वारा हम भव सागर को तैर सकते हैं। तैरने की कला ही जीवन का सार है। इसके अभाव मे सब बेकार है ।

एक दृष्टान्त सहसा मेरी स्मृति पट पर आगया है । एक समुद्री यात्री ने मल्लाह से पूछा—

"क्या तू खगोल-भूगोल जानता है?"

"नही श्रीमान् ! मै नही जानता ।"

"तेरी पाव जिन्दगी पानी मे गई ।"

फिर पूछा—

"तू क्या व्याकरण, छद वगैरह जानता है ?"

"नही हुजूर ! मैं तो कुछ भी नही जानता हूँ ।"

"तेरी आधी जिन्दगी पानी मे व्यर्थ बोनी ।"

"क्या तू न्याय का विषय जानता है ।"

नधन न जमीन, न आदर न सम्मान । वे जीवन से तग आक
मरने को तैयार हो जाते हैं, किन्तु ऐसी विकट वेला में भी उन्हे ए
सहारा मिलता है। गिरती हुई दीवार को सुरक्षित रखने का ए
टेका मिलता है। वह थे पच महाव्रत धारी एक महान् सन्त। उनव
वाणी थी—

'मत मरो"

इस प्रकार मरने से दुख बढता है, घटता नही। चिरकाल तक
संसार परिभ्रमण करना पडता है।

उस पर सतवाणी का महान् प्रभाव हुआ, चारित्र के क्षेत्र
मे उन्होने अपने कदम आगे बढाये। वे शुद्ध सयमाचरण करते हुए
नानाविध लब्धिया प्राप्त कर गये।

घोर और कठोर तप साधना से देव भी उनके अधीन होगय।
जिसका विस्तृत विवरण 'उत्तराध्ययन सूत्र' के बारहवे अध्याय मे
उअंकित है।

चारित्र के द्वारा हम भव सागर को तैर सकते हैं। तैरने की
कला ही जीवन का सार है। इसके अभाव मे सब बेकार है।

एक दृष्टान्त सहसा मेरी स्मृति पट पर आगया है। एक समुद्री
यात्री ने मल्लाह से पूछा—

"क्या तू खगोल-भूगोल जानता है?"
"नही श्रीमान्! मैं नही जानता।"
"तेरी पाव जिन्दगी पानी मे गई।"
फिर पूछा—
"तू क्या व्याकरण, छद वगैरह जानता है?"
"नही हुजूर! मैं तो कुछ भी नही जानता हूँ।"
"तेरी आधी जिन्दगी पानी मे व्यर्थ खोनी।"
"क्या तू न्याय का विषय जानता है।"

आग्रह और सब अनुकूल साधन। फिर भी राम सदाचार की सरिता में और कनिष्ठ कर्त्तव्य की गंगा में निमज्जित रहे। यह उनकी महानता की परम कसौटी थी।

जैसे कसौटी पर सौटंची स्वर्ण ही खरा उतरता है, राम उसी प्रकार सदाचार में खरे उतरे। यह उस युग की बात है, जिस युग में राजाओं के अन्तःपुर हजारों रानियों से भरे रहते थे। राम ने एक पत्नी व्रत धर्म का पालन किया।

हमारे पूर्वजों का जीवन संयत व नियमित था। वे चारित्र धर्म का सम्यक् आराधन करते थे।

रघुवंश के राजाओं की सदा से यह खूबी रही है कि वे जीवन के तीन भाग तीन पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ और काम) की साधना में पूरे करते थे। किन्तु ज्यों ही चौथी अवस्था उनके सन्निकट आती, जीवन की संध्या को नजदीक देखते त्योंही वे तत्काल संभल जाते और निवृत्ति-पथ अपना लेते थ।

उनके जीवन का सुन्दर चित्र कालिदास ने 'रघुवंश' नामक महाकाव्य में अंकित किया है।

"बचपन में सम्पूर्ण विद्याओं का अध्ययन करना, युवावस्था में भोग की अभिलाषा रखना है। वृद्धावस्था में मुनियों की तरह जीवन-यापन करना और अन्त में योग-साधना से शरीर का त्याग करना।"[1]

किन्तु आज तो 'रोज के अन्त में शरीर का त्याग किया जाता है।

इस प्रकार ज्ञान और सदाचरण के समन्वय से आज के इस जलते हुए विश्व में भी सुख शान्ति की सुराह प्राप्त कर सकते हैं। पर श्रावक के आचार का तो आज निरन्तर ह्रास होता जा रहा है।

१—शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां, यौवने विषयैषिणाम्॥
वार्धके मुनिवृत्तीनां, योगेनान्ते तनुत्यजाम्।

आग्रह और सब अनुकूल साधन। फिर भी राम सदा चार की सरिता में और कनिष्ठ कर्त्तव्य की गगा में निमज्जित रहे। यह उनकी महानता की परम कसौटी थी।

जैसे कसौटी पर सौटंची स्वर्ण ही खरा उतरता है, राम उसी प्रकार सदाचार में खरे उतरे। यह उस युग की बात है, जिस युग मे राजाओ के अन्तःपुर हजारों रानियो से भरे रहते थे। राम ने एक पत्नी व्रत धर्म का पालन किया।

हमारे पूर्वजो का जीवन सयत व नियमित था। वे चारित्र धर्म का सम्यक् आराधन करते थे।

रघुवश के राजाओ की सदा से यह खूबी रही है कि वे जीवन के तीन भाग तीन पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ और काम) की साधना मे पूरे करते थे। किन्तु ज्यों ही चौथी अवस्था उनके सन्निकट आती, जीवन की सध्या को नजदीक देखते त्योंही वे तत्काल सभल जाते और निवृत्ति-पथ अपना लेते थ।

उनके जीवन का सुन्दर चित्र कालिदास ने 'रघुवश' नामक महाकाव्य मे अकित किया है।

"बचपन मे सम्पूर्ण विद्याओ का अध्ययन करना, युवावस्था में भोग की अभिलाषा रखना है। वृद्धावस्था मे मुनियो की तरह जीवन-यापन करना और अन्त मे योग-साधना से शरीर का त्याग करना।'

किन्तु आज तो 'रोज के अन्त मे शरीर का त्याग किया जाता है।

इस प्रकार ज्ञान और सदाचरण के समन्वय से आज के इस जलते हुए विश्व में भी सुख शान्ति की सुराह प्राप्त कर सकते हैं। पर श्रावक के आचार का तो आज निरन्तर ह्रास होता जा रहा है।

१—शैशवेऽभ्यस्त विद्यानां, यौवने विषयैषिणाम्॥
वार्धके मुनिवृत्तीनां, योगे नान्ते तनुत्यजाम्।

तो आज आत्मिक शान्ति एवं विश्व समृद्धि के लिए निर्वाणो-न्मुख टिमटिमाते सच्चरित्र के प्रशस्त प्रदीप को सद्वृत्तियों के स्नेह (तेल) से पुनः प्रज्वलित करना है। सभी विषम समस्याओं का ही एक मात्र सुखद सुन्दर समाधान है जो वर्तमान परिस्थितियों मे आवश्यक ही नही, प्रत्युत अपरिहार्य है।

किसी भयानक वन मे बहुत जोरो से आग लगी हो और उसमे एक अन्धा और दूसरी तरफ एक लूला व्यक्ति फुलस रहा हो, ऐसी विषम वेला मे दोनों आपस में प्रेम करलें और कहदे कोई बात नही यदि हमें अंग अपूर्ण मिले हैं परन्तु हम एक दूसरे के सहायक बन कर इस बीहड़ भूमि से पार हो जायेंगे। अन्धा अपने कन्धे पर लूले को चढाले और लूला उन्हे मार्ग दर्शन करता रहे तो वे दोनों सरलता से पार होंगे या नही, उत्तर स्पष्ट है कि अवश्य ही होंगे।

तो आइये हम अपने जीवन को ज्ञान क्रिया के समन्वय से सुन्दर, समुज्ज्वल स्वरूप प्रदान करें ताकि हमारे लड़खड़ाते कदम—

"अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, और मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ सकें।"

तो आज आत्मिक शान्ति एवं विश्व समृद्धि के लिए निर्वाणोन्मुख टिमटिमाते सच्चरित्र के प्रशस्त प्रदीप को सद्वृत्तियों के स्नेह (तैल) से पुनः प्रज्वलित करना है। सभी विषम समस्याओं का ही एक मात्र सुखद सुन्दर समाधान है जो वर्तमान परिस्थितियों में आवश्यक ही नहीं, प्रत्युत अपरिहार्य है।

किसी भयानक वन में बहुत जोरों से आग लगी हो और उसमें एक अन्धा और दूसरी तरफ एक लूला व्यक्ति झुलस रहा हो, ऐसी विषम वेला में दोनों आपस में प्रेम करलें और कहदे कोई बात नहीं यदि हमें अंग अपूर्ण मिले हैं परन्तु हम एक दूसरे के सहायक बन कर इस बीहड़ भूमि से पार हो जायेंगे। अन्धा अपने कन्धे पर लूले को चढाले और लूला उन्हें मार्ग दर्शन करता रहे तो वे दोनों सरलता से पार होंगे या नहीं, उत्तर स्पष्ट है कि अवश्य ही होंगे।

तो आइये हम अपने जीवन को ज्ञान क्रिया के समन्वय से सुन्दर, समुज्ज्वल स्वरूप प्रदान करें ताकि हमारे लड़खडाते कदम—

"अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर, और मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ सकें।"

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सुन्दर कड़ियो मे अगली लडी तप।
आज पर्युषण पर्व का यह चौथा दिवस तप की साधना कराने आ
है। तप मानव के त्याग, कष्टसहिष्णुता, एव आत्मशक्ति
परिचायक है, कर्म-निर्जरा का एक प्रमुख साधन है। आज के
शुभ दिवस के सदेश को समझ हम इस तपोग्नि मे तप अपनी आ
को सोना ही नही खरा कुन्दन बनाएँ।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र की सुन्दर कडियो मे अगली लडी तप
आज पर्युषण पर्व का यह चौथा दिवस तप की साधना कराने अ
है। तप मानव के त्याग, कष्टसहिष्णुता, एव आत्मशक्ति
परिचायक है, कर्म-निर्जरा का एक प्रमुख साधन है। आज के
शुभ दिवस के सदेश को समझ हम इस तपोग्नि मे तप अपनी आ
को सोना ही नही खरा कुन्दन बनाएं।

इसका एक मात्र कारण यह हो सकता है कि बिना तपे भी नही मिलता । जब भयकर गर्मी पड़ती है, तभी वर्षा होती कवि के शब्दो में—

"जब सूरज गर्मी करे, तप वर्षण की आस।"

बिना कष्ट सहन किये फिर कही भी कुछ नही मिलता। अं में एक कहावत है—

No Pains. No Gains.

तपना, मिटना नही बल्कि बनना है।

दीपक स्वय जलकर ही प्रकाश वितरित करता है।

अगरबत्ती खुद जलती है तो वातावरण को सौर बनाती है।

बीज जब मिट्टी मे खप जाता है, तभी वृक्ष लहलहाता है।

नीव की ईट जब अधेरे में अपने अस्तित्व को समाप्त देती है, तभी भव्य भवन खड़े होते हैं।

आत्मा अनन्त अनन्त काल से जो हमें क्रोधादि कषायों कामादि विकारो से अशुद्ध दृष्टिगत होता है, वास्तव में यह दशा उसका स्वभाव नही, बल्कि विभाव है। जब विभाव है तो अशुद्धि आत्मा से दूर भी हट सकती है और उसे दूर हटाने के आचार्यो ने ज्ञान और तप को प्रमुख माना है।

"चारित्र से आने वाले कर्मों को रोका जाता है तो त द्वारा विगत जन्मों के एकत्र पाप को क्षय किया जाता है।"[1]

जिस प्रकार साबुन हमारे शरीर एवं कपड़ों पर लगे हुए को खा जाता है, ठीक इसी प्रकार तप हमारी आत्मा पर लगे कर्म-मल को खा जाता है।

१—चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ।

इसका एक मात्र कारण यह हो सकता है कि बिना तपे भी नही मिलता। जब भयकर गर्मी पड़ती है, तभी वर्षा होती। कवि के शब्दो में—

"जब सूरज गर्मी करे, तप वर्षण की आस।"

बिना कष्ट सहन किये फिर कही भी कुछ नही मिलता। अंग्रे में एक कहावत है—

No Pains. No Gains.

तपना, मिटना नही बल्कि बनना है।

दीपक स्वय जलकर ही प्रकाश वितरित करता है।

अगरबत्ती खुद जलती है तो वातावरण को सौरभ बनाती है।

बीज जब मिट्टी मे खप जाता है, तभी वृक्ष लहलहाता है।

नीव की ई ट जब अ धेरे में अपने अस्तित्व को समाप्त देती है, तभी भव्य भवन खड़े होते हैं।

आत्मा अनन्त अनन्त काल से जो हमें क्रोधादि कषायों कामादि विकारो से अशुद्ध दृष्टिगत होता है, वास्तव में यह दशा उसका स्वभाव नही, बल्कि विभाव है। जब विभाव है तो अशुद्धि आत्मा से दूर भी हट सकती है और उसे दूर हटाने के आचार्यों ने ज्ञान और तप को प्रमुख माना है।

"चारित्र से आने वाले कर्मों को रोका जाता है तो त द्वारा विगत जन्मों के एकत्र पाप को क्षय किया जाता है।"[1]

जिस प्रकार साबुन हमारे शरीर एवं कपड़ों पर लगे हुए को खा जाता है, ठीक इसी प्रकार तप हमारी आत्मा पर लगे कर्म-मल को खा जाता है।

१—चरित्तेण निगिण्हाइ, तवेण परिसुज्झइ।

धर्म का लक्षण बताते हुए आचार्य शय्यंभव ने भी—"तप को उत्कृष्ट धर्म का एक महत्व पूर्ण अ ग कहा है।"[1]

तप को हस से भी उपमित किया जा सकता है। जिस प्रकार हस अपनी चोच के स्पर्श से दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है. इसी प्रकार तप आत्मा पर लगे हुए कर्म-मल को आत्मा से अलग कर देता है।

"जैसे किसी बडे तालाब का जल, उसका रास्ता रोक देने से सिचाई करने से एव सूर्यादि के ताप से क्रमशः–सूख जाता है इसी प्रकार सयमशील मुनि के द्वारा पाप कर्म रोक दिये जाने पर करोड़ों जन्मो के सचित पापकर्म तप से क्षीण हो जाते हैं।"[2]

भगवान महावीर ने कितना सुन्दर फरमाया है—

"तवसा धुणइ पुराण पावगं।'

(द० उ० ६ उ० ४ गा० ४)

तप से प्राचीन कर्मों को नष्ट किया जाता है।

"इच्छा का निरोध करना तप है।"[3]

इस प्रकार शास्त्रो मे तप की परिभाषा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।

जैनागमो में तप को मुख्य रूप से दो भागो में विभक्त किया गया है—

१—धम्मो मगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो। (द० १ –१)

२—जहा महातलागस्स, सन्निरुद्धे जलागमे॥
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे।
एवं तु संजयस्सावि, पावकम्म निरासवे।
भव कोडि संचियंकम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ॥ (उ. अ. ३० गा.) (५-६)

३. इच्छा निरोहो तवो।

धर्म का लक्षण बताते हुए आचार्य शय्यंभव ने भी—"तप को उत्कृष्ट धर्म का एक महत्व पूर्ण अंग कहा है।"[1]

तप को हंस से भी उपमित किया जा सकता है। जिस प्रकार हंस अपनी चोंच के स्पर्श से दूध और पानी को अलग-अलग कर देता है, इसी प्रकार तप आत्मा पर लगे हुए कर्म-मल को आत्मा से अलग कर देता है।

"जैसे किसी बड़े तालाब का जल, उसका रास्ता रोक देने से सिंचाई करने से एवं सूर्यादि के ताप से क्रमशः—सूख जाता है इसी प्रकार संयमशील मुनि के द्वारा पाप कर्म रोक दिये जाने पर करोड़ों जन्मों के संचित पापकर्म तप से क्षीण हो जाते हैं।"[2]

भगवान महावीर ने कितना सुन्दर फरमाया है—

"तवसा धुणइ पुराण पावगं।"

(द० उ० ६ उ० ४ गा० ४)

तप से प्राचीन कर्मों को नष्ट किया जाता है।

"इच्छा का निरोध करना तप है।"[3]

इस प्रकार शास्त्रों में तप की परिभाषा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है।

जैनागमों में तप को मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त किया गया है—

१—धम्मो मंगल मुक्किट्ठं, अहिंसा संजमो तवो। (द० १-१)

२—जहा महातलागस्स, सन्निरुद्धे जलागमे॥
उस्सिंचणाए तवणाए, कमेण सोसणा भवे।
एवं तु संजयस्सावि, पावकम्म निरासवे।
भव कोडि संचियंकम्मं, तवसा निज्जरिज्जइ॥ (उ. अ. ३० गा.) (५-६)

३. इच्छा निरोहो तवो।

"रोज गधा जैसा चर, किन्तु एकादशी तो कर।"

बौद्ध ग्रन्थ सयुक्त निकाय में एक कथन मिलता है—

"तप और ब्रह्मचर्य बिना पानी का स्नान है।"[1]

इस्लाम धर्म में रमजान के महिने मे वे अपने ढग से एक महिने भर तक तपस्या करते हैं।

मुहम्मद साहब का 'कुरान शरीफ' मे स्पष्ट कथन है—

'भूखे रहे बिना भूखे व्यक्ति को पीड़ा हम कैसे जान सकते हैं—

पर जैन धर्म में तप-साधना का जो सर्वांग सम्पूर्ण विवेचन एवं महत्व है वह अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। वस्तुत: जैन धर्म का सर्वोच्च तप अनुपम है।

हमारे चरम आराध्य तीर्थंकरों का पुनीत जीवन तप से परिपूरित है।

भगवान ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक छद्मस्थावस्था में विविध प्रकार के तप किये।

श्रमण भगवान महावीर ने पूर्व जन्म में नन्दन भूपति के भव मे ग्यारह लाख साठ हजार मासखमन किए थे। भगवान् महावीर का यह तप बहुत ही उग्र था। आचाराग आदि सूत्रो में महावीर के तप का वर्णन सुन रोमाच हो आता है। कारण, महावीर के कर्म भी महान् कठोर बन्धे हुए थे, अतः उन्हे तोड़ने के लिए कठोर तप की महती आवश्यकता थी।

महावीर के साधकों का तप भी बड़ा गजब का रहा है। अनुत्तरोपपातिक, अन्तकृद् दशांग और भगवती सूत्र के पृष्ठो पर आज भी उनका तपोमय जीवन सुरक्षित है। ये तप कई प्रकार के हैं जैसे—कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, एकावली, लघुसिंह निष्क्रीड़ित,

१—तपोच ब्रह्मचर्यं च त सिनान मनोरकं॥ (संयुक्त १।१।५८)

"रोज गधा जैसा चर, किन्तु एकादशी तो कर।"

बौद्ध ग्रन्थ संयुक्त निकाय में एक कथन मिलता है—

"तप और ब्रह्मचर्य बिना पानी का स्नान है।"[1]

इस्लाम धर्म में रमजान के महिने मे वे अपने ढग से एक महिने भर तक तपस्या करते हैं।

मुहम्मद साहब का 'कुरान शरीफ' मे स्पष्ट कथन है—

'भूखे रहे बिना भूखे व्यक्ति की पीड़ा हम कैसे जान सकते हैं'—

पर जैन धर्म में तप-साधना का जो सर्वांग सम्पूर्ण विवेचन एवं महत्व है वह अन्यत्र कहीं भी दुर्लभ है। वस्तुत: जैन धर्म का सर्वोच्च तप अनुपम है।

हमारे चरम आराध्य तीर्थंकरों का पुनीत जीवन तप से परिपूरित है।

भगवान ऋषभदेव ने एक हजार वर्ष तक छद्मस्थावस्था में विविध प्रकार के तप किये।

श्रमण भगवान महावीर ने पूर्व जन्म में नन्दन भूपति के भव मे ग्यारह लाख साठ हजार मासखमन किए थे। भगवान् महावीर का यह तप बहुत ही उग्र था। आचारांग आदि सूत्रो में महावीर के तप का वर्णन सुन रोमाच हो आता है। कारण, महावीर के कर्म भी महान् कठोर बंधे हुए थे, अतः उन्हें तोड़ने के लिए कठोर तप की महती आवश्यकता थी।

महावीर के साधकों का तप भी बड़ा गजब का रहा है। अनुत्तरोपपातिक, अन्तकृत् दशांग और भगवती सूत्र के पृष्ठो पर आज भी उनका तपोमय जीवन सुरक्षित है। ये तप कई प्रकार के हैं जैसे— कनकावली, रत्नावली, मुक्तावली, एकावली, लघुसिंह निष्क्रीडित,

---

१—तपोच ब्रह्मचर्यं च त सिनान मनोदकं ॥ (संयुक्त १।१।४८)

तप से हम घोरातिघोर कर्मों को क्षय कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकते हैं। हत्यारे अर्जुन माली का घोर तपश्चरण इस तथ्य का ज्वलन्त प्रतीक है।

कुल और जाति से हीन एवं तिरस्कृत व्यक्ति भी यदि तपः तेज से सुशोभित है तो वह हरिकेश बल मुनि की तरह नर देव आदि सबका वन्दनीय बन जाता है।

'मनुस्मृति' में भी कहा है—

'तपके माध्यम से मनोगत मलिनता नष्ट होती है।'[1]

'वाल्मीकि रामायण' में भी तप की प्रशंसा करते कहा है—

"निश्चय करके तप परम कल्याण करने वाला है"[2]

"जिसको तैरना कठिन है, जिसे प्राप्त करना मुश्किल है, जो दुर्गम और दुष्कर है, वह सब कठिन कार्य भी तप के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। निश्चय ही तप के प्रभाव से सब कठिनाइयों को पार किया जा सकता है।"[3]

कई मानवों को यह धारणा है कि तप-साधना करने से शरीर दुर्बल होता है। हाथ-पैरों में कमजोरी आती है। यह धारणा गलत है, भ्रमपूर्ण है। आज के विज्ञान ने भी इस बात को सिद्ध करने का प्रयास किया है कि तप करने से आदमी नीरोग होता है उसका आत्म-बल बढ़ता है और उसका आन्तर सौन्दर्य कुन्दन की भान्ति निखर उठता है। प्राकृतिक चिकित्सकों का यह अनुभव पूर्ण विचार है कि पन्द्रह दिनों में एक उपवास मानव के सर्वांग स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

---

१. तपसा कल्मषं हन्ति (मनुस्मृति)

२. तपो हि परमं श्रेयः (वाल्मीकि रामायण)

३. यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गम् यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं, तपो हि दुरतिक्रमम्। (मनुस्मृति)

तप से हम घोरातिघोर कर्मों को क्षय कर सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हो सकते हैं। हत्यारे अर्जुन माली का घोर तपश्चरण इस तथ्य का ज्वलन्त प्रतीक है।

कुल और जाति से हीन एवं तिरस्कृत व्यक्ति भी यदि तपः तेज से सुशोभित है तो वह हरिकेश बल मुनि की तरह नर देव आदि सबका वन्दनीय बन जाता है।

'मनुस्मृति' में भी कहा है—

'तपके माध्यम से मनोगत मलिनता नष्ट होती है।'[1]

'वाल्मीकि रामायण' में भी तप की प्रशंसा करते कहा है—

"निश्चय करके तप परम कल्याण करने वाला है"[2]

"जिसको तैरना कठिन है, जिसे प्राप्त करना मुश्किल है, जो दुर्गम और दुष्कर है, वह सब कठिन कार्य भी तप के द्वारा सिद्ध किया जा सकता है। निश्चय ही तप के प्रभाव से सब कठिनाइयों को पार किया जा सकता है।"[3]

कई मानवों की यह धारणा है कि तप-साधना करने से शरीर दुर्बल होता है। हाथ-पैरों में कमजोरी आती है। यह धारणा गलत है, भ्रमपूर्ण है। आज के विज्ञान ने भी इस बात को सिद्ध करने का प्रयास किया है कि तप करने से आदमी नीरोग होता है उसका आत्म-बल बढ़ता है और उसका आन्तर सौन्दर्य कुन्दन की भान्ति निखर उठता है। प्राकृतिक चिकित्सकों का यह अनुभव पूर्ण विचार है कि पन्द्रह दिनों में एक उपवास मानव के सर्वांग स्वास्थ्य के लिये आवश्यक है।

---

१. तपसा कल्मषं हन्ति (मनुस्मृति)
२. तपो हि परम श्रेयः (वाल्मीकि रामायण)
३. यद् दुस्तरं यद् दुरापं यद् दुर्गम् यच्च दुष्करम्।
सर्वं तु तपसा साध्यं, तपो हि दुरति क्रमम्। (मनुस्मृति)

धनार्थी धन कमाने के नशे में दिन भर भूखा रहता है, आत्म ज्ञानियों की दृष्टि से उसका यह भूखा रहना तप नहीं है क्योंकि इन तीनों की यह आत्मसाधना संसाराभिमुख है। अपना स्वार्थ सीधा करना है। अतः यह तप नहीं, कर्मनिर्जरा नहीं, कर्म बन्ध है।

"निर्दोष कामना रहित और केवल निर्जरा के लिए सद्बुद्धि के साथ दिल के उत्साह से तप करना शुभ एवं प्रशस्त तप माना गया है।[1]

तप करके किसी प्रकार के फल की इच्छा करना निरी मूर्खता है। 'सूत्र कृताग सूत्र' की सूक्तियों में प्रभु महावीर ने क्या ही सुन्दर भाव व्यक्त किये हैं—

"तप के द्वारा पूजा प्रतिष्ठा की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए।[2]

आचार्य शय्यंभव ने भी इस तप के प्रवृत्ति एव निवृत्ति दोनों प्रकार के पथ का प्रदर्शन किया है—

"इस लोक की कामना (पुत्रैषणा, धनैषणा, लोकैषणा) के लिए परलोक की कामना (इन्द्र,अहमिन्द्र, चक्रवर्ती आदि) के लिए तथा कीर्ति श्लाघा, प्रशंसा के लिए तप करना निषिद्ध है। एकान्त निर्जरा यानी कर्म बन्ध को काटने का सकल्प रखकर तप करना चाहिए।"[3]

१—निर्दोष निर्विदानाढ्य तन्निर्जरा प्रयोजनम्।
चित्तोत्साहेन सद् बुद्धया, तपनीयं तः शुभम्॥

२—नो पूयणं तवसा प्रवहेज्जा।(सू०१।७।२७)

३—नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, नो परलोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा, नं कित्तिवण्ण सद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, नन्नत्य निज्जरट्ठयाए तव .महिट्ठिज्जा (द० म० ६ उ० ४

धनार्थी धन कमाने के नशे में दिन भर भूखा रहता है, आत्म ज्ञानियों की दृष्टि से उसका यह भूखा रहना तप नहीं। क्योंकि इन तीनों की यह आत्मसाधना संसाराभिमुख है। अपना स्वार्थ सीधा करना है। अतः यह तप नहीं, कर्मनिर्जरा नहीं कर्म बन्ध है।

"निर्दोष कामना रहित और केवल निर्जरा के लिए सद्बुद्धि के साथ दिल के उत्साह से तप करना शुभ एवं प्रशस्त तप माना गया है।[1]

तप करके किसी प्रकार के फल की इच्छा करना निरी मूर्खता है। 'सूत्र कृताग सूत्र' की सूक्तियों में प्रभु महावीर ने क्या ही सुन्दर भाव व्यक्त किये हैं—

"तप के द्वारा पूजा प्रतिष्ठा की अभिलाषा नहीं करनी चाहिए।[2]

आचार्य शय्यंभव ने भी इस तप के प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों प्रकार के पथ का प्रदर्शन किया है—

"इस लोक की कामना (पुत्रैषणा, धनैषणा, लोकैषणा) के लिए परलोक की कामना (इन्द्र,अहमिन्द्र, चक्रवर्ती आदि) के लिए तथा कीर्ति श्लाघा, प्रशंसा के लिए तप करना निषिद्ध है। एकान्त निर्जरा यानी कर्म बन्ध को काटने का सकल्प रखकर तप करना चाहिए।"[3]

१—निर्दोष निर्विदानाढ्य तन्निर्जरा प्रयोजनम्।
चित्तोत्साहेन सद् बुद्धया, तपनीयं तः शुभम्॥

२—नो पूयणं तवसा अवहेज्जा।(सू०१।७।२७)

३—नो इहलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, नो परलोगट्ठयाए तव महिट्ठिज्जा, नो कित्तिवण्ण सद्दसिलोगट्ठयाए तवमहिट्ठिज्जा, नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तव मिहिट्ठिज्जा (द० अ० ९ उ० ४

कुछ शैथिल्य अवश्य आगया है किन्तु नारी के कदम आज भी ज्यों के त्यों आगे हैं।

वर्तमान समय में हमारी नारी जाति में विभिन्न प्रकार के (अठाई, मास खमण, वर्षी तप, चन्दन बाला का तेला, सुख तेला, रस तेला, प्रदेशी राजा के बेले आदि) तप किये जाते हैं किन्तु आज तप का रूप बड़ा विकृत हो गया है। तप में कर्मनिर्जरा के प्रति जो एकान्त उत्साह व आनन्द होना चाहिए, वह आज अनेक रूढ़ियों, प्रलोभनों व प्रदर्शनों में ही रह गया है। हम सामान्यतः व्यवहार में अपनी बहिनों की दृष्टि डालकर देखते हैं तो तप के मूल में विशेष प्रलोभन प्रवृत्ति बढ़ती प्रतीत होती है। किसी बहिन को तपश्चरण के प्रति आकर्षित किया जाय तो कभी-कभी वह ऐसा कहती हुई मालूम होती है कि—

"महाराज मुझे अठाई अवश्य करना है, किन्तु पहली बार ही कर रही हूं। इसलिए सास-ससुर, माता पितादि कहते हैं कि इस समय हमारी स्थिति ठीक नहीं है। अभी हमने और-और खर्च भी निकाले हैं। अभी हमने कई प्रसंगों पर विपुल मात्रा में व्यय किया है। अतः इस साल नहीं, अगले साल कर लेना।

प्रलोभन की ये बातें सुनकर बहिनों का मन पिघल जाता है, और वे सोचने लगती हैं, वास्तव में ये लोग ठीक ही कहते हैं। इस परिस्थिति में तप करने से न तो पूरा लाड प्यार ही मिलेगा और न पीहर से ही सुन्दर वस्त्राभूषण आवेंगे, न मधुर गाजे-बाजे ही बजेंगे और न अनेक प्रकार (नारियल, लड्डू, पतासा आदि) की प्रभावना ही दी जावेगी। समाज ठीक ढंग से जान भी नहीं पावेगा कि अमुक घर में तपस्या हुई है।

तप कर्म करते समय जहां हमारी यह पवित्र भावना होनी चाहिए कि आरम्भ परिग्रह कैसे कम हो, वहां आज तप के नाम पर असीम आरम्भ परिग्रह बढ़ाये जा रहे हैं। तप के नाम पर प्रीतिभोज

कुछ शैथिल्य अवश्य आगया है किन्तु नारी के कदम आज भी ज्यों के त्यों आगे हैं।

वर्तमान समय में हमारी नारी जाति में विभिन्न प्रकार के (अठाई, मास खमण वर्षी तप, चन्दन बाला का तेला, सुख तेला, रत्न तेला, प्रदेशी राजा के बेले आदि) तप किये जाते हैं किन्तु आज तप का रूप बड़ा विकृत हो गया है। तप में कर्मनिर्जरा के प्रति जो एकान्त उत्साह व आनन्द होना चाहिए, वह आज अनेक रूढ़ियों, प्रलोभनों व प्रदर्शनों में ही रह गया है। हम सामान्यतः व्यवहार में अपनी बहिनों की दृष्टि डालकर देखते हैं तो तप के मूल में विशेष प्रलोभन प्रवृत्ति बढ़ती प्रतीत होती है। किसी बहिन को तपश्चरण के प्रति आकर्षित किया जाय तो कभी-कभी वह ऐसा कहती हुई मालूम होती है कि—

"महाराज मुझे अठाई अवश्य करना है, किन्तु पहली बार ही कर रही हूँ। इसलिए सास-ससुर, माता पितादि कहते हैं कि इस समय हमारी स्थिति ठीक नहीं है। अभी हमने और-और खर्चे भी निकाले हैं। अभी हमने कई प्रसंगों पर विपुल मात्रा में व्यय किया है। अतः इस साल नहीं, अगले साल कर लेना।

प्रलोभन की ये बातें सुनकर बहिनों का मन पिघल जाता है और वे सोचने लगती हैं, वास्तव में ये लोग ठीक ही कहते हैं। इस परिस्थिति में तप करने से न तो पूरा लाड़ प्यार ही मिलेगा और न पीहर से ही सुन्दर वस्त्राभूषण आवेंगे, न मधुर गाजे-बाजे ही बजेंगे और न अनेक प्रकार (नारियल, लड्डू, पताशा आदि) की प्रभावना ही दी जावेगी। समाज ठीक ढंग से जान भी नहीं पावेगा कि अमुक घर में तपस्या हुई है।

तप कर्म करते समय जहां हमारी यह पवित्र भावना होनी चाहिए कि आरम्भ परिग्रह कैसे कम हो, वहां आज तप के नाम पर असीम आरम्भ परिग्रह बढ़ाये जा रहे हैं। तप के नाम पर प्रीतिभोज

त्याग नहीं किया तो यह एक प्रकार का लंघन ही होगा।"[1]

अतः तपस्या करते समय पूरी सावधानी और जागरूकता की आवश्यकता है। यदि विवेकपूर्वक तप किया गया तो निश्चय ही हमारी आत्मा तप का सस्पर्श पाकर कुन्दन की भांति निखर उठेगी।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने मन को सम्बोधित करते हुए यही कहा है—

"तप रे मधुर मधुर मन ॥"

---

१. कषाय विषयाहाराणां त्यागो यत्र विधीयते।
उपवासः स विज्ञेयः, शेषं लंघनकं विदुः ॥

त्याग नहीं किया तो यह एक प्रकार का लंघन ही होगा।"[1]

अतः तपस्या करते समय पूरी सावधानी और जागरूकता की आवश्यकता है। यदि विवेकपूर्वक तप किया गया तो निश्चय ही हमारी आत्मा तप का सस्पर्श पाकर कुन्दन की भांति निखर उठेगी।

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि श्री सुमित्रानन्दन पन्त ने मन को सम्बोधित करते हुए यही कहा है—

"तप रे मधुर मधुर मन ॥"

५ | दान

भारतीय संस्कृति सदा से दान एवं त्याग प्रधान रही है। यहा के लोगो ने प्रसंग उपस्थित होने पर तन दिया है, धन दिया है, मन की शुभ भावना दी है, शरणागत की रक्षा के लिये रक्त मास ही क्या जीवन देने मे भी संकोच नही किया। एक ही शब्द मे कहना चाहें तो हम यों कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति के उपासको ने कभी-कभी तो अपना सर्वस्व भी परोपकार मे हंसते हंसते समर्पण कर दिया है। यह है हमारी पवित्र संस्कृति जिस पर हम ही नहीं दुनिया चकित व गर्वित है।

भारतीय संस्कृति के ऋषिमुनियो ने और हजारो धर्म ग्रन्थों ने मानव की महत्ता के गुणगान मुक्त कठ से किए हैं। सब तरह के जन्मो मे मानव जन्म को ही अत्युत्तम कहा है और साथ अति कठिन भी। शास्त्रकार के शब्दों मे—

"मनुष्य जन्म बहुत ही दुर्लभ है।"[१]

मानव की उस महानता का एक मात्र कारण है सत्य, सदाचार, दान, दया, क्षमा, सहनशीलता, विनय और बहुमान आदि सद्गुण। इन सद्गुणों से मानव ने स्वर्गलोक में रहने वाले देवों को भी मानव बनने के लिये प्रेरित किया है। वे भी तड़फते हैं और छटपटाते हैं कि कब हम भी भारत भूमि मे जाकर जन्म लें और मानव बनें। मानव का जीवन देवों के लिये भी स्पृहणीय है। वे कहा करते हैं:—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारत भूमिभागे।"

१. दुल्ल हे खलु माणुसे भवे॥

५ | दान

भारतीय सस्कृति सदा से दान एवं त्याग प्रधान रही है। यहा के लोगो ने प्रसंग उपस्थित होने पर तन दिया है, धन दिया है मन की शुभ भावना दी है, शरणागत की रक्षा के लिये रक्त मात ही क्या जीवन देने मे भी संकोच नही किया। एक ही शब्द मे कहना चाहे तो हम यों कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति के उपासको ने कभी कभी तो अपना सर्वस्व भी परोपकार मे हंसते हंसते समर्पण क दिया है। यह है हमारी पवित्र संस्कृति जिस पर हम ही नहीं दुनिय चकित व गर्वित है।

भारतीय संस्कृति के ऋषिमुनियो ने और हजारो धर्म ग्रन्थ ने मानव की महत्ता के गुणगान मुक्त कठ से किए हैं। सब तरह जन्मो मे मानव जन्म को ही अत्युत्तम कहा है और साथ अति कठि भी। शास्त्रकार के शब्दों मे—

"मनुष्य जन्म बहुत ही दुर्लभ है।"[१]

मानव की उस महानता का एक मात्र कारण है सत्य, सद चार, दान, दया, क्षमा, सहनशीलता, विनय और बहुमान आदि सदगु इन सदगुणों से मानव ने स्वर्गलोक में रहने वाले देवों को भी मान बनने के लिये प्रेरित किया है। वे भी तड़पते हैं और छटपटाते हैं कब हम भी भारत भूमि मे जाकर जन्म लें और मानव बनें। मान का जीवन देवों के लिये भी स्पृहणीय है। वे कहा करते हैं:—

"गायन्ति देवाः किल गीतकानि,
धन्यास्तु ये भारत भूमिभागे।"

---

१. दुल्ल हे खलु माणुसे भवे॥

दान की महिमा एव गरिमा अकथनीय है। त्याग, समर्पण और विसर्जन आदि दान के ही पर्याय हैं जिसके अभाव में मानव नगण्य रहेगा।

अथाह समुद्र में निमज्जित व्यक्ति को साधन-शक्ति होते हुए नही बचाना जैसे पाप है ठीक उसी प्रकार वैभव सम्पन्न होने पर भी किसी दीन-दुखी का दर्द नही मिटाना भी भयकर पाप है।

जैसे किसी ईमानदार सद्गृहस्थ के समीप रखा हुआ बहुमूल्य द्रव्य भी सुरक्षित रहता है और मागने पर बिना किसी बाधा के तत्काल उपलब्ध हो जाता है ठीक उसी प्रकार दान मे दिया हुआ द्रव्य भी सुरक्षित रहता है।

मील के शेयर होल्डर (भागीदार) को तो कभी हानि भी उठानी पडती है किन्तु धार्मिक क्रिया सत्पात्र के दानी को तो सर्वत्र नित नूतन लाभ की सुप्राप्ति होती है।

"संग्रह करने वाला व्यक्ति प्रायः करके समुद्र के रसातल को प्राप्त करता है किन्तु दाता मेघ की तरह सबके ऊपर गर्जना करता है।"[1]

महाभारत पर्व ५ अ० ३३ श्लोक० १०४ में भी दान का महत्व उभरा है।

"बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय-निग्रह, विद्या, पराक्रम, भाषा, संयम, कृतज्ञता और दान देना इन आठ गुणों से पुरुष दीप्तिमान होता है।"[2]

देना-खोना नहीं है। प्राप्त करना है। कुछ देगें तो प्राप्त

---

१. सगृहैक परः प्रायः, समुद्रोऽपि रसातलम्।
दाता तु जलदः पाय, भुवनोपरि गर्जति ॥

२. अष्टौ गुणाः पुरुष दीपयन्ति, प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ॥
पराक्रमश्चाबहु भाषिता च, दान यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

दान की महिमा एवं गरिमा अकथनीय है। त्याग, समर्पण और विसर्जन आदि दान के ही पर्याय हैं जिसके अभाव में मानव नगण्य रहेगा।

अथाह समुद्र में निमज्जित व्यक्ति को साधन-शक्ति होते हुए नही बचाना जैसे पाप है ठीक उसी प्रकार वैभव सम्पन्न होने पर भी किसी दीन-दुखी का दर्द नही मिटाना भी भयकर पाप है।

जैसे किसी ईमानदार सद्गृहस्थ के समीप रखा हुआ बहुमूल्य द्रव्य भी सुरक्षित रहता है और मागने पर बिना किसी बाधा के तत्काल उपलब्ध हो जाता है ठीक उसी प्रकार दान मे दिया हुआ द्रव्य भी सुरक्षित रहता है।

मील के शेयर होल्डर (भागीदार) को तो कभी हानि भी उठानी पडती है किन्तु धार्मिक क्रिया सत्पात्र के दानी को तो सर्वत्र नित नूतन लाभ की सुप्राप्ति होती है।

"संग्रह करने वाला व्यक्ति प्रायः करके समुद्र के रसातल को प्राप्त करता है किन्तु दाता मेघ की तरह सबके ऊपर गर्जना करता है।"[1]

महाभारत पर्व ५ अ० ३३ श्लोक० १०४ में भी दान का महत्व उभरा है।

"बुद्धि, कुलीनता, इन्द्रिय-निग्रह, विद्या, पराक्रम, भाषा, संयम, कृतज्ञता और दान देना इन आठ गुणों से पुरुष दीप्तिमान होता है।"[2]

देना-खोना नहीं है। प्राप्त करना है। कुछ देगें तो प्राप्त

१. संग्रहैक परः प्रायः, समुद्रोऽपि रसातलम्।
दाता तु जलदः पश्य, भुवनोपरि गर्जति ॥

२. अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति, प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ॥
पराक्रमश्चाबहु भाषिता च, दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

विद्वानों ने धन की गति को तीन भागों में विभक्त किया है—'खाना, खिलाना और नाश। दान और भोग मे इसका सदुपयोग नहीं किया गया तो नाश तो अवश्यभावी है।"[1]

अतः एक हाथ से खाओ तो दूसरे हाथ से खिलाओ।

कहा जाता है कि एक बार ब्रह्माजी के पास देव-गण पहुचे और याचना करने लगे—

"प्रभो! हमे कुछ दीजिये।"

उन्होने कहा "द"

"द" अर्थात् तुम अपने विलासी जीवन पर नियन्त्रण करो यानी स्वच्छन्द इन्द्रियो का दमन करो इससे सुखी बनोगे।

जब देवों के वहा पहुचने के समाचार दानवों को मिले तो भला वे पीछे कैसे रह सकते थे? दौड़-दौड़ वे भी ब्रह्मा के पास पहुचे और कुछ विनम्र शब्दो में प्रार्थना की—

विधाता ने इनसे भी कहा—"द" अर्थात् तुम बहुत उद्दंड प्रकृति के हो अतः तुम्हे दया करनी चाहिये। यही कल्याण का सीधा राजमार्ग है।

देव और दानवो ने जब ब्रह्माजी से वरद प्राप्त कर लिया तब भला यह बात मानवो से कैसे छिपी रह सकती थी? उन्हें भी इस रहस्य का पता चला और वे भी पवन गति से वहा पहुंचे और सुख के साधन की प्रार्थना करने।

ब्रह्मा ने कहा—

"द" अर्थात् तुम्हें दान देना चाहिये। यही शान्ति की सच्ची राह है। यह पौराणिक प्रसग स्पष्ट करता है कि मनुष्य को अपने धन का मुक्तहस्त से दान करना ही हितकर है।

१—इस धन की गति तीन है, दान भोग अरु नाश।
दान भोग मे ना लगे तो, निश्चय होय विनास॥

विद्वानों ने धन की गति को तीन भागो में विभक्त किया है- 'खाना, खिलाना और नाश। दान और भोग मे इसक सदुपयोग नहीं किया गया तो नाश तो अवश्यभावी है।"[१]

अत. एक हाथ से खाओ तो दूसरे हाथ से खिलाओ।

कहा जाता है कि एक बार ब्रह्माजी के पास देव-गण पहुचे और याचना करने लगे—

"प्रभो! हमे कुछ दीजिये।"

उन्होने कहा "द"

"द" अर्थात् तुम अपने विलासी जीवन पर नियन्त्रण करो यानी स्वच्छन्द इन्द्रियों का दमन करो इससे सुखी बनोगे।

जब देवों के वहा पहुचने के समाचार दानवों को मिले तो भला वे पीछे कैसे रह सकते थे? दौड़-दौड़ वे भी ब्रह्मा के पास पहुचे और कुछ विनम्र शब्दो में प्रार्थना की—

विधाता ने इनसे भी कहा—"द" अर्थात् तुम बहुत उद्दण्ड प्रकृति के हो अतः तुम्हे दया करनी चाहिये। यही कल्याण का सीधा राजमार्ग है।

देव और दानवो ने जब ब्रह्माजी से वरद प्राप्त कर लिया तब भला यह बात मानवो से कैसे छिपी रह सकती थी? उन्हें भी इस रहस्य का पता चला और वे भी पवन गति से वहा पहुँचे और लगे सुख के साधन की प्रार्थना करने।

ब्रह्मा ने कहा—

"द" अर्थात् तुम्हें दान देना चाहिये। यही शान्ति की सच्ची राह है। यह पौराणिक प्रसंग स्पष्ट करता है कि मनुष्य को अपने धन का मुक्तहस्त से दान करना ही हितकर है।

१—इस धन की गति तीन है, दान भोग अरु नाश।
दान भोग में ना लगे तो, निश्चय होय विनास॥

मेघरथ राजा ने एक छोटे से पक्षी कपोत की सुरक्षा के लिये निर्ममत्व बुद्धि से अपने सुकोमल तन का मांस काट-काट कर तराजू पर रख दिया किन्तु अपने समक्ष हिंसा का ताण्डव नृत्य नहीं होने दिया। अभयदान के महा प्रभाव से ही ये आगे चलकर सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ बने।

सब प्रकार के बन्धनों में कनक और कान्ता का बन्धन बहुत ही मजबूत माना गया है, किन्तु कुछ वीर पुरुषों ने अभयदान की सुरक्षा में कान्ता तक के स्नेह का धागा की बात में काट दिया। उसकी झांकी प्रस्तुत करते आप हम बहुत ही गौरवान्वित होते हैं।

बाड़े और पिंजरे को पशु पक्षियों से भरा देखकर भगवान नेमिनाथ का सहज कोमल हृदय करुणा से द्रवित हो गया और वे सारथी से बोले—

"ये सुख के इच्छुक सभी प्राणी बाड़ों और पिंजरों में क्यों बन्द हैं ?"[1]

सारथी ने विनम्र शब्दों में प्रत्युत्तर दिया—

'ये सब भद्र प्राणी आपके विवाह में आने वाले बहुत से मनुष्यों के भोजन के लिये काम लिये जाएंगे।"[2]

बस इतना सुनना था कि भगवान का हृदय दया से द्रवित हो गया।

मेरा विवाह और इतना भयंकर अनर्थ। नहीं, मैं इतना घोर अन्याय कभी नहीं सह सकता। सिर्फ दो प्राणियों के मधुर मिलन के लिये निर्बल व असहाय हजारों प्राणियों को असमय में मौत के घाट

१—कस्स अट्ठा इमे पाणा, एए सव्वे सुहेसिणो ॥
वाडेहिं पजरेहिं च, सन्निरुद्धाय अच्छहिं ॥ (उ० अ० २२ गा० १६)

२—अह सारही तओ भणइ, एए भद्दाउ पाणिणो।
तुज्झ विवाह कज्जम्मि, भोयावेउ, बहुं जणं। (उ० अ० २२ गा० १७)

मेघरथ राजा ने एक छोटे से पक्षी कपोत की सुरक्षा के लिये निर्ममत्व बुद्धि से अपने सुकोमल तन का मांस काट-काट कर तराजू पर रख दिया किन्तु अपने समक्ष हिंसा का ताण्डव नृत्य नहीं होने दिया। अभयदान के महा प्रभाव से ही वे आगे चलकर सोलहवें तीर्थंकर शान्तिनाथ बने।

सब प्रकार के बन्धनों में कनक और कान्ता का बन्धन बहुत ही मजबूत माना गया है, किन्तु कुछ वीर पुरुषों ने अभयदान की सुरक्षा में कान्ता तक के स्नेह का बात की बात में काट दिया। उसकी झांकी प्रस्तुत करते आप हम बहुत ही गौरवान्वित होते हैं।

बाड़े और पिंजरे को पशु पक्षियों से भरा देखकर भगवान नेमिनाथ का सहज कोमल हृदय करुणा से द्रवित हो गया और वे सारथी से बोले—

"ये सुख के इच्छुक सभी प्राणी बाड़ों और पिंजरों में क्यों बन्द हैं ?"[1]

सारथी ने विनम्र शब्दों में प्रत्युत्तर दिया—

'ये सब भद्र प्राणी आपके विवाह में आने वाले बहुत से मनुष्यों के भोजन के लिये काम लिये जाएंगे।"[2]

बस इतना सुनना था कि भगवान का हृदय दया से द्रवित हो गया।

मेरा विवाह और इतना भयंकर अनर्थ। नहीं, मैं इतना घोर अन्याय कभी नहीं सह सकता। सिर्फ दो प्राणियों के मधुर मिलन के लिये निर्बल व असहाय हजारों प्राणियों को असमय में मौत के घाट

१—कस्स अट्ठाइमेपाणा, ए ए सव्वे सुहेसिणो ॥
वाडेहिं पंजरेहिं च, सन्निरुद्धाय अच्छहिं ॥ (उ० अ० २२ गा० १६)
२—अह सारही तओ भणइ, ए ए भद्दाउ पाणिणो।
तुज्झ विवाह कज्जम्मि, भोयावेउ, बहुं जणं। (उ० अ० २२ गा० १७)

तरह के सुपात्र का सुयोग उपलब्ध हो तब हमें अत्यन्त हर्षित हो प्रमोद भावना से देना चाहिये और सर्व विरति साधु-साध्वी का अगर सुप्रसग प्राप्त हो तब तो अत्यधिक प्रमुदित भाव से चौदह (असरण, पाण, खादिम स्वादिम वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक, औषध और भेषज) प्रकार के पदार्थ देने चाहिये।

देते समय चित्त, वित्त और पात्र की शुद्धता आवश्यक है। चित्त=देने वाले दाता का मनशुद्ध, उदार एव निष्काम होना चाहिये। वित्त=जो वस्तु दी जा रही है वह भी बयालीस अथवा सेंतालीस दोष रहित प्रासुक एव शुद्ध होनी चाहिये। पात्र=लेने वाला भिक्षुक भी ज्ञान-क्रिया सम्पन्न शुद्ध होना चाहिये। जब इस त्रिपुटी का सगम होता है तब कार्य-सिद्धि अविलम्ब होती है।

देते समय हमारे अन्तःकरण में प्रति बदले की भावना नही होनी चाहिये क्योकि शास्त्रकारो ने कहा है—

"निस्वार्थ भाव से देने वाला दाता, और सयम निर्वाहार्थ लेने वाला भिक्षु ये दोनो दुर्लभ होते हैं। निस्वार्थी दाता और मुनि मोक्ष के अधिकारी होते हैं।"[1] इस विषय मे संगम ग्वाले का दृष्टान्त द्रष्टव्य है।

बडी कठिनता से उपलब्ध खीर को पाकर संगम ग्वाले का मन-मयूर हर्षोन्मित्त था। वह हर्ष विभोर हो किसी सयमी मुनि की प्रतीक्षा कर रहा था। नीति का वाक्य है कि—

"जैसी जिसकी भावना होती है उसको वैसी ही सिद्धि मिलती है।"[2] सगम को भी मासखमण के एक घोर तपस्वी का सुयोग मिला। फिर क्या था? प्रमोद भावना उमड पडी। गुरु चरणो मे पहुचा। प्रार्थना की—

१—दुल्लहाओमुहादाई, मुहाजीवीवि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छन्ति सुगई (द. अ. ५ उ-१ गा. १०८)

२—यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।

तरह के सुपात्र का सुयोग उपलब्ध हो तब हमें अत्यन्त हर्षित हो प्रमोद भावना से देना चाहिये और सर्व विरति साधु-साध्वी का अगर सुप्रसग प्राप्त हो तव तो अत्यधिक प्रमुदित भाव से चौदह (असरण, पाण, खादिम स्वादिम वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक, औषध और भेषज) प्रकार के पदार्थ देने चाहिये।

देते समय चित्त, वित्त और पात्र की शुद्धता आवश्यक है। चित्त=देने वाले दाता का मनशुद्ध, उदार एव निष्काम होना चाहिये। वित्त=जो वस्तु दी जा रही है वह भी बयालीस अथवा सैतालीस दोष रहित प्रामुक एव शुद्ध होनी चाहिये। पात्र=लेने वाला भिक्षुक भी ज्ञान-क्रिया सम्पन्न शुद्ध होना चाहिये। जब इस त्रिपुटी का सगम होता है तब कार्य-सिद्धि अविलम्ब होती है।

देते समय हमारे अन्त:करण में प्रति वदले की भावना नही होनी चाहिये क्योकि शास्त्रकारो ने कहा है—

"निस्वार्थ भाव से देने वाला दाता, और सयम निर्वाहार्थ लेने वाला भिक्षु ये दोनो दुर्लभ होते हैं। निस्वार्थी दाता और मुनि मोक्ष के अधिकारी होते हैं।[1] इस विषय मे संगम ग्वाले का दृष्टान्त द्रष्टव्य है।

बडी कठिनता से उपलब्ध खीर को पाकर संगम ग्वाले का मन-मयूर हर्षोन्मित्त था। वह हर्ष विभोर हो किसी सयमी मुनि की प्रतीक्षा कर रहा था। नीति का वाक्य है कि—

"जैसी जिसकी भावना होती है उसको वैसी ही सिद्धि मिलती हैं।"[2] सगम को भी मासखमण के एक घोर तपस्वी का सुयोग मिला। फिर क्या था? प्रमोद भावना उमड पडी। गुरु चरणो मे पहु चा। प्रार्थना की—

१—दुलहाओमुहादाई, मुहाजीवीवि दुल्लहा।
मुहादाई मुहाजीवी, दो वि गच्छंति सुगई (द. अ. ५ उ-१ गा. १०८)

२—यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।

बलभद्र मुनि के साथ सम्बन्धित हरिण ने कब दान दिया था। किन्तु उसका उदाहरण हमे वह बताता है कि उसने पवित्र भावना के माध्यम से ही पाचवे ब्रह्मदेवलोक को प्राप्त कर लिया।

सुपात्रदान के बल से संसार को सीमित करने वाले एक दो उदाहरण नही किन्तु हजारो दृष्टान्तो से हमारे आगमों के स्वर्णिम पृष्ठ आज भी चमक रहे हैं। गीताकार श्रीकृष्ण ने दान को तीन भागो मे विभक्त किया है। वे है १राजसदान २ तामसदान और ३ सात्विक दान।

सज्जनो को, हितैषियों को एवं प्रियजनो को प्रीत्यर्थ देना राजस दान है।

वैश्या आदि के नाच-गान पर खुश होकर अहंकारवश या मनोरंजनवश देना तामसदान है।

किन्तु, इन दोनों प्रकार के दानो से सात्विक दान ही सर्वोत्कृष्ठ है। उसकी परिभाषा करते हुए भी साकार श्रीकृष्ण ने कहा है—

"उपकार का सम्बन्ध छोडकर उचित देश, काल और पात्र में दिया जाने वाला दान ही सात्विक कहलाता है।"[1]

दान श्रावक के जीवन का प्रधान गुण है। द्वादश व्रतो मे यह अन्तिम व्रत है। शास्त्रो मे कहा है—

"संविभाग के बिना मुक्ति नही होती।"[2]

'राजप्रश्नीय सूत्र मे सम्राट प्रदेशी का प्रसग है। केशीश्रमण के पावन सम्पर्क से घोर हिंसक राजा प्रदेशी जब अहिंसक श्रमणोपासक बन जाता है तो वह अपनी राज्यश्री को चार भागों में विभक्त

१—दातव्यमिति यद्दानं, दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च, तद्दानं सात्विकं मतम्।

२—असंविभागी न हु तस्स मोक्खो (द. अ. ९)

बलभद्र मुनि के साथ सम्बन्धित हरिण ने कब दान दिया था। किन्तु उसका उदाहरण हमे वह बताता है कि उसने पवित्र भावना के माध्यम से ही पाचवे ब्रह्मदेवलोक को प्राप्त कर लिया।

सुपात्रदान के बल से संसार को सीमित करने वाले एक दो उदाहरण नही किन्तु हजारो दृष्टान्तो से हमारे आगमों के स्वर्णिम पृष्ठ आज भी चमक रहे हैं। गीताकार श्रीकृष्ण ने दान को तीन भागो मे विभक्त किया है। वे है १राजसदान २ तामसदान और ३ सात्विक दान।

सज्जनो को, हितैषियों को एवं प्रियजनो को प्रीत्यर्थ देना राजस दान है।

वैश्या आदि के नाच-गान पर खुश होकर अहंकारवश या मनोरंजनवश देना तामसदान है।

किन्तु, इन दोनो प्रकार के दानो से सात्विक दान ही सर्वोत्कृष्ठ है। उसकी परिभाषा करते हुए भी साकार श्रीकृष्ण ने कहा है—

"उपकार का सम्बन्ध छोडकर उचित देश, काल और पात्र में दिया जाने वाला दान ही सात्विक कहलाता है।"[1]

दान श्रावक के जीवन का प्रधान गुण है। द्वादश व्रतो मे यह अन्तिम व्रत है। शास्त्रो मे कहा है—

"सविभाग के विना मुक्ति नही होती।"[2]

'राजप्रश्नीय सूत्र मे सम्राट प्रदेशी का प्रसग है। केशीश्रमण के पावन सम्पर्क से घोर हिंसक राजा प्रदेशी जब अहिंसक श्रमणोपासक बन जाता है तो वह अपनी राज्यश्री को चार भागों मे विभक्त

१—दातव्यमिति यद्दानं, दीयतेऽनुपकारिणे।
देशे काले च पात्रे च, तद्दान सात्विक मतम्।

२—असविभागी न हु तस्स मोक्खो (द. अ. ९)

"जैसे अडवा खेत का, खाय न खावा देय।"

न तो वह स्वयं खाता है और न दूसरे पशुपक्षी को ही खा देता है, किन्तु नीति स्पष्ट करती है कि—

"जोड गया शिर फोड़ गया, गाड़ गया झकमार गया।
खाय गया सो खोय गया, जो देय गया सो लेय गया।"

यदि कोई मानव भूख से छटपटा रहा है। उसे तन ढकने को पूरे वस्त्र नही मिल रहे हैं। रहने को झोपडी नही है। ऐसी विषम बेला में यदि आप उसकी दीन दशा पर हंसते हैं एवं उसकी ओर ध्यान नही देते हैं तो आपकी सपदा व्यर्थ है। यदि आप उसकी बीभित्स दशा को सिर्फ टुगर मुगर निहारते ही रहते हैं तो पशु के समान है। किन्तु यदि आप उसे समय पर सहायता देकर धर्म मे स्थिर करते हैं तो आप मानव ही नही, किन्तु महामानव हैं।

दुखी को देखकर अनुकपा करना सम्यक्त्व का लक्षण है।

परन्तु खेद का विषय है कि आज इस दान के पवित्र क्षेत्र में भी मानव की ममत्व बुद्धि ज्यों कि त्यो बनी हुई है। अधिकाश मानव यशकीर्ति के लिये देते हैं। यदि दानवीरो की गणना में उनको प्रमुख स्थान नहीं मिलता है तो दानी का शिर ठनक उठता है। वह देना कम और लेना अधिक चाहता है। तथा कथित ऐसे नाम के भूखे दानवीरो के लिए किसी कवि की चुभती बात अर्थ पूर्ण है—

"एरण की चोरी करे, दे सुई को दान।
चढ डागलिये देखता, कद आसी विमान।"

किन्तु यह प्रवृत्ति अच्छी नही है। एक किसान यदि भूसे के लिये ही खेती करता है तो वह मूर्ख ही नही बल्कि महामूर्ख समझा जाता है। ठीक इसी प्रकार कीर्ति भी एक प्रकार का भूसा है और उसके लिये ही देना अपने आपको उपहास का पात्र बनाना है।

"जैसे अडवा खेत का, खाय न खावा देय।"

न तो वह स्वयं खाता है और न दूसरे पशुपक्षी को ही खाने देता है, किन्तु नीति स्पष्ट करती है कि—

"जोड़ गया शिर फोड़ गया, भाड़ गया भकमार गया।
खाय गया सो खोय गया, जो देय गया सो लेय गया।"

यदि कोई मानव भूख से छटपटा रहा है। उसे तन ढकने को पूरे वस्त्र नही मिल रहे हैं। रहने को भोपडी नही है। ऐसी विषम बेला में यदि आप उसकी दीन दशा पर हंसते हैं एवं उसकी ओर ध्यान नही देते हैं तो आपकी सपदा व्यर्थ है। यदि आप उसकी बीभित्स दशा को सिर्फ टुगर मुगर निहारते ही रहते हैं तो पशु के समान है। किन्तु यदि आप उसे समय पर सहायता देकर धर्म मे स्थिर करते हैं तो आप मानव ही नही, किन्तु महामानव हैं।

दुखी को देखकर अनुकपा करना सम्यक्त्व का लक्षण है।

परन्तु खेद का विषय है कि आज इस दान के पवित्र क्षेत्र में भी मानव की ममत्व बुद्धि ज्यों कि त्यो बनी हुई है। अधिकाश मानव यशकीर्त्ति के लिये देते हैं। यदि दानवीरो की गणना में उनको प्रमुख स्थान नहीं मिलता है तो दानी का शिर ठनक उठता है। वह देना कम और लेना अधिक चाहता है। तथा कथित ऐसे नाम के भूखे दानवीरो के लिए किसी कवि की चुभती बात अर्थ पूर्ण है—

"एरण की चोरी करे, दे सुई को दान।
चढ डागलिये देखता, कद आसी विमान।"

किन्तु यह प्रवृत्ति अच्छी नही है। एक किसान यदि भूसे के लिये ही खेती करता है तो वह मूर्ख ही नही बल्कि महामूर्ख समझा जाता है। ठीक इसी प्रकार कीर्ति भी एक प्रकार का भूसा है और उसके लिये ही देना अपने आपको उपहास का पात्र बनाना है।

"भाव बिना क्रिया सब फीकी ।"

चन्दनबाला ने प्रभु महावीर को क्या दिया था अर्थात् कहना होगा कि कुछ नहीं। क्योंकि सूखे उड़द के बाकुले एक भिखमगा भी सहज में नहीं चाहता, पर वही पदार्थ चन्दना ने प्रभु को देकर गिरते हुए कल्प वृक्ष को सुरक्षित रख लिया एवं संसार को भी सीमित कर लिया। चन्दना के इस भाव भरे उड़द के बाकुलो पर संसार के कोटि कोटि बहुमूल्य हीरे पन्ने न्यौछावर किए जा सकते हैं।

बौद्ध धर्म ग्रन्थ दीर्घ निकाय में कहा है—

"सत्कार पूर्वक दान दो, अपने हाथ से दान दो, मन से दान दो, ठीक तरह से दोषरहित दान दो।"[1]

'संयुक्त निकाय' में भी बतलाया है—

मात्सर्य और प्रमाद से दान नहीं देना चाहिये।"[2]

आज लाखों करोड़ों का धन देने वाले उपलब्ध होंगे किन्तु सच्चा दानी वही है जो अपनी आवश्यकता व इच्छा को काट कर देता है। इसीलिये महाभारत का निम्न प्रसिद्ध कथानक द्रष्टव्य है।

युधिष्ठिर की राजसभा मे उनके राजसूय यज्ञ की प्रशंसा के पुल बांधे जा रहे थे।

ठीक उसी समय वहीं पर प्रकट होकर एक नेवले ने मनुष्य वाणी में बोलना प्रारम्भ किया—

आज कहां है, यज्ञ करने वाले सच्चे दानी। जिसकी किंग्रा लोग प्रशंसा कर रहे हैं। वास्तव में सच्चादानी तो वह ब्राह्मण परिवार है जिससे कि उछवृत्ति से उपार्जित भोजन को किसी अपने से अत्यधिक भूखे को समर्पित कर अपने आपको धन्य-धन्य कृतकृत्य बनाया था।

१—सक्कं दानं देथ, सहत्था दानं देथ।
चित्तीकतं दानं देथ, अनपविद्धं दानं देथ। (२।१०।५)

२—मच्छेरा च पमादा च, एवं [illegible] । (१।१।३२)

"भाव बिना क्रिया सब फीकी ।"

चन्दनबाला ने प्रभु महावीर को क्या दिया था अर्थात् कहना होगा कि कुछ नहीं। क्योंकि सूखे उड़द के बाकुले एक भिखमगा भी सहज में नहीं चाहता, पर वही पदार्थ चन्दना ने प्रभु को देकर गिरते हुए कल्प वृक्ष को सुरक्षित रख लिया एव संसार को भी सीमित कर लिया। चन्दना के इस भाव भरे उडद के बाकुलो पर संसार के कोटि कोटि बहुमूल्य हीरे पन्ने न्यौछावर किए जा सकते हैं।

बौद्ध धर्म ग्रन्थ दीर्घ निकाय में कहा है —

"सत्कार पूर्वक दान दो, अपने हाथ से दान दो, मन से दान दो, ठीक तरह से दोषरहित दान दो।"[१]

'संयुक्त निकाय' में भी बतलाया है—

मात्सर्य और प्रमाद से दान नही देना चाहिये।"[२]

आज लाखो करोडों का धन देने वाले उपलब्ध होगे किन्तु सच्चा दानी वही है जो अपनी आवश्यकता व इच्छा को काट कर देता है। इसीलिये महाभारत का निम्न प्रसिद्ध कथानक द्रष्टव्य है।

युधिष्ठिर की राजसभा मे उनके राजसूय यज्ञ की प्रशसा के पुल बाधे जा रहे थे।

ठीक उसी समय वहीं पर प्रकट होकर एक नेवले ने मनुष्य वाणी में बोलना प्रारम्भ किया—

आज कहां है, यज्ञ करने वाले सच्चे दानी। जिसकी कि आप लोग प्रशंसा कर रहे हैं। वास्तव में सच्चादानी तो वह ब्राह्मण परिवार है जिसने कि उञ्छवृत्ति से उपार्जित भोजन को किसी अपने से अत्यधिक भूखे को समर्पित कर अपने आपको धन्य-धन्य कृतकृत्य बनाया था।

१—सक्कच्चं दान देथ, सहत्था दानं देथ।
चित्तीकत्वा दानं देथ, अनपविद्धं दानं देथ। (२।१०।५)

२—मच्छेरा च पमादा च, एवं दानं न दीयति। (१।१।३२)

जैन धर्म में दया की तरह सुपात्र दान की भी अत्यधिक महिमा गाई गई है। जैन दर्शन की तरह वैदिक एव बौद्ध दर्शन मे भी दान धर्म और पात्रदान का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

हिरात का शेख अब्दुल्ला असार अपने शिष्यों मे कहा करता था कि— 'अनन्त आकाश मे उडना कोई बहुत बडी क्रान्ति नही है, क्योंकि वहाँ तो गन्दी से गन्दी मक्खिया भी उड सकती हैं। पुलिया या नौके के द्वारा नदियो को पार कर लेना भी कोई महान् चमत्कार नही है क्योकि एक कुत्ता भी ऐसा कर सकता है, किन्तु दुःखी आत्मा को सहायता देना बहुत बडा चमत्कार है जो पवित्र आत्मा ही किया करते हैं।"

जो व्यक्ति अपने जीवन मे धर्माचरण चाहता है उसे सर्वप्रथम दान वृत्ति अपनाना चाहिये। दान और शील ही गृहस्थ धर्म के प्रमुख अग हैं।

किसी कवि ने ठीक ही कहा ह —

"हाथ की शोभा दान से है, कचन से नही।"[१]

अन्त मे धम्मपद के शब्दो मे—

"धर्म का दान सब दानो से बढकर है।[२]

जैन धर्म में दया की तरह सुपात्र दान की भी अत्यधिक महिमा गाई गई है। जैन दर्शन की तरह वैदिक एव बौद्ध दर्शन मे भी दान धर्म और पात्रदान का महत्त्व प्रतिपादित किया गया है।

हिरात का शेख अब्दुल्ला असार अपने शिष्यों मे कहा करता था कि– 'अनन्त आकाश मे उडना कोई बहुत बडी क्रान्ति नही है, क्योंकि वहाँ तो गन्दी से गन्दी मक्खियां भी उड सकती हैं। पुलिया या नौके के द्वारा नदियो को पार कर लेना भी कोई महान् चमत्कार नही है क्योंकि एक कुत्ता भी ऐसा कर सकता है, किन्तु दुःखी आत्मा को सहायता देना बहुत बडा चमत्कार है जो पवित्र आत्मा ही किया करते हैं।"

जो व्यक्ति अपने जीवन मे धर्माचरण चाहता है उसे सर्वप्रथम दान वृत्ति अपनाना चाहिये। दान और शील ही गृहस्थ धर्म के प्रमुख अग हैं।

किसी कवि ने ठीक ही कहा ह —

"हाथ की शोभा दान से है, कचन से नही।"[१]

अन्त मे धम्मपद के शब्दो मे—

"धर्म का दान सब दानो से बढकर है।[२]

२– दानेन पाणिनं तुकरणेन।
सब्बदानं धम्म दान जिनाति।

'मर्यादित जीवन ही वास्तविक' जीवन है। आत्म नियंत्रण सबसे बडी विजय है। हम अपनी इन्द्रियों के स्वामी बनें न कि दास। तन, मन, वाणी एवं आत्मा को संयमित रखने की प्रेरणा लिए पर्युषण का यह छट्ठा दिवस हमारे सामने उपस्थित है। जीवन में संयम भाव को अपनाएं, यही आज के दिन की साधना है।"

'मर्यादित जीवन ही वास्तविक 'जीवन है। आत्म नियंत्र
सबसे बड़ी विजय है। हम अपनी इन्द्रियों के स्वामी बनें न कि दास
तन, मन, वाणी एवं आत्मा को संयमित रखने की प्रेरणा लि
पर्युषण का यह छट्ठा दिवस हमारे सामने उपस्थित है । जीवन
संयम भाव को अपनाएं, यही आज के दिन की साधना है।"

हवा जब मर्यादा से बाहर निकल जाती है तो भयकर तूफान खडा कर देती है। हजारों वर्ष के प्राचीन पेड़ उखड-उखड़ कर भूमिसात् हो जाते हैं। महल दब जाते हैं और छप्पर के छप्पर आसमान में उड़ जाते है।

इस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि और हवा जैसे पदार्थ भी मर्यादा का अतिक्रमण करने पर प्रलयकर हो सकते हैं तो प्रज्ञाबलधारी मानव मर्यादा से अलग-अलग होकर क्यों नही सर्वनाश को आमन्त्रित करेगा।

कार (मर्यादा) को लाघकर सीता महासती ने भी अपने आपको बन्धन मे डाल दिया था।

'उत्तराध्यन सूत्र' के ३२ वें अध्ययन मे असंयम जीवन के अनिष्ट फल विभिन्न उदाहरणों से सम्यक् प्रकार से समझाये गये हैं।

"दूब के कोमल अकुरो को खाकर पुष्ट तन वाला हिरण कानन मे अपनी हरिणियो के सग विलास युक्त क्रीडा करता हुआ सुमधुर सुरीले स्वर में उन्मत्त बन उधर आकृष्ट हो जाता है। स्रोतेन्द्रिय के इस असयम की परिणति व्याघ के बाण द्वारा असमय दुखद मृत्यु के रूप में होती हैं।"[1]

रूप का लोभी पतंगा अग्नि के चमकीले जाज्वल्यमान दृश्य को देख अपने आपको भूल जाता है। बस फिर क्या ? वह वह्नि शिखा में अपने आपको स्वाहा कर देता है और तड़फ तड़फ कर अपनी प्राण लीला समाप्त कर देता है, यह कटु फल है चक्षुरिन्द्रिय के असंयम का।

१—दूर्वाङ्कुराशन समृद्ध वपुःने कुरगः
क्रीडन् वनेषु हरिणीभिरसो विलासैः
भत्यन्त गेय रव दत्तमना वराकः
श्रोत्रेन्द्रियेण समवाप्ति सुखं प्रयाति ॥

हवा जब मर्यादा से बाहर निकल जाती है तो भयकर तूफान खडा कर देती है। हजारों वर्ष के प्राचीन पेड़ उखड-उखड़ कर भूमिसात् हो जाते हैं। महल दब जाते हैं और छप्पर के छप्पर आसमान में उड़ जाते है।

इस प्रकार पृथ्वी, जल, अग्नि और हवा जैसे पदार्थ भी मर्यादा का अतिक्रमण करने पर प्रलयकर हो सकते हैं तो प्रज्ञाबलधारी मानव मर्यादा से अलग-अलग होकर क्यों नही सर्वनाश को आमन्त्रित करेगा।

कार (मर्यादा) को लाघकर सीता महासती ने भी अपने आपको वन्धन मे डाल दिया था।

'उत्तराध्यन सूत्र' के ३२ वें अध्ययन मे असंयम जीवन के अनिष्ट फल विभिन्न उदाहरणों से सम्यक् प्रकार से समझाये गये हैं।

"दूब के कोमल अकुरो को खाकर पुष्ट तन वाला हिरण कानन मे अपनी हरिणियो के सग विलास युक्त क्रीडा करता हुआ सुमधुर सुरीले स्वर में उन्मत्त बन उधर आकृष्ट हो जाता है। स्रोतेन्द्रिय के इस असयम की परिणति व्याघ के वाण द्वारा असमय दुखद मृत्यु के रूप में होती हैं।"[1]

रूप का लोभी पतंगा अग्नि के चमकीले जाज्वल्यमान दृश्य को देख अपने आपको भूल जाता है। बस फिर क्या ? वह वह्नि शिखा में अपने आपको स्वाहा कर देता है और तड़फ तड़फ कर अपनी प्राण लीला समाप्त कर देता है, यह कटु फल है चक्षुरिन्द्रिय के असंयम का।

१—दूर्वाङ्कुराशन समृद्ध वपुर्ने कुरगः
क्रीडन् वनेषु हरिणीभिरसौ विलासैः
अत्यन्त गेय रव दत्तमना वराकः
श्रोत्रेन्द्रियेण समवर्ति मुखं प्रयाति॥

अतः निम्नलिखित दृष्टान्त से हमें संयमी बनने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

एक जापानी भक्त से महात्मा गांधी को तीन बन्दरों के खिलौने प्राप्त हुए।

एक ने अपने नेत्रों को, दूसरे ने अपने कानों को तथा तीसरे ने अपने मुंह को हाथ से बद कर रक्खा था।

प्रदर्शनी में उस खिलौने को देख लोगों ने साश्चर्य पूछा—

"यह क्या है ? इन्होने मुख आख, और कान को क्यों बन्द कर रक्खा है"

रहस्य प्रकट करते हुए महात्माजी ने उन लोगो को समझाया— "मुंह से कभी भी गन्दे शब्द न बोलना, कानो से अश्लील शब्द नही सुनना तथा नेत्रो से कामोत्तेजक रूप नही देखना। हमें इस चित्र से यही सत् शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए—

सयम शब्द की परिभाषा करते हुए आचार्यों ने हमें बताया है—

मर्यादा पूर्वक इन्द्रियों का निग्रह करना सयम है।"[१]

संयम के बिना हमारी सब साधना अधूरी है। यह संयम मुख्यतया तीन विभागो मे विभिक्त है—मन संयम, वाणी सयम और काया सयम।

१. मन संयम—

जैसे इन्द्रिय संयम आवश्यक है उससे भी कई गुणा अत्यधिक मन संयम है। कहा गया है—

"इन्द्रियेभ्यः परं मनः।"

अर्थात् मन की चचलता इन्द्रियों की चंचलता से बढकर है। इस विषय में एक गुजराती कवि ने बहुत सुन्दर विचार हमारे समक्ष उपस्थित किए हैं—

१—स मर्यादया नियन्त्रणं संयमः

अतः निम्नलिखित दृष्टान्त से हमें संयमी बनने की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

एक जापानी भक्त से महात्मा गांधी को तीन बन्दरों के खिलौने प्राप्त हुए।

एक ने अपने नेत्रों को, दूसरे ने अपने कानों को तथा तीसरे ने अपने मुंह को हाथ से बंद कर रखा था।

प्रदर्शनी में उस खिलौने को देख लोगों ने साश्चर्य पूछा—

"यह क्या है ? इन्होने मुख आंख, और कान को क्यों बन्द कर रक्खा है"

रहस्य प्रकट करते हुए महात्माजी ने उन लोगों को समझाया—"मुँह से कभी भी गन्दे शब्द न बोलना, कानो से अश्लील शब्द नही सुनना तथा नेत्रों से कामोत्तेजक रूप नहीं देखना। हमें इस चित्र से यही सत् शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए—

सयम शब्द की परिभाषा करते हुए आचार्यों ने हमें बताया है—

मर्यादा पूर्वक इन्द्रियों का निग्रह करना सयम है।"[1]

संयम के बिना हमारी सब साधना अधूरी है। यह संयम मुख्यतया तीन विभागो मे विभक्त है—मन संयम, वाणी सयम और काया सयम।

१. मन संयम—

जैसे इन्द्रिय संयम आवश्यक है उससे भी कई गुणा अत्यधिक मन संयम है। कहा गया है—

"इन्द्रियेभ्यः परं मनः।"

अर्थात् मन की चचलता इन्द्रियों की चंचलता से बढकर है। इस विषय में एक गुजराती कवि ने बहुत सुन्दर विचार हमारे समक्ष उपस्थित किए हैं—

१—स मर्यादया नियन्त्रणं संयमः

कोई यह चाहे कि हमे घोडा मिले तो अच्छा, किन्तु वह चंचल प्रकृति का नही होना चाहिए। बताइए क्या कभी ऐसा सभव है ? नही। अगर आप ऐसा ही चाहते हैं तो उत्तर स्पष्ट है कि आपको असली घोडा नही, वल्कि नकली घोडा या शीतला का घोडा चाहिए। वास्तव मे अगर सजीव और अच्छी नस्ल का घोडा है तो उसमे अवश्य ही चंचलता होगी। इसी प्रकार जिसे मन मिला है तो वह अवश्य ही कुछ न कुछ चिन्तन करेगा। चिन्तन के अभाव में मन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

मन किसे मिलता है ? क्या कभी एकेन्द्रिय जीवो के भी मन की प्राप्ति हो सकती है। नही, कभी नही। मन की प्राप्ति अनन्त पुण्योदय से सज्ञी पचेन्द्रिय को ही प्राप्त होती है। अन्य प्राणी तो मन रहित ही होते हैं। तब भला महान् पुण्योदय से मिले इस पवित्र मन को मारने की बात क्यो ?

लोग कहा करते हैं, क्या करे, हमारा मन ही नही लगता। किन्तु यह स्थिति भी ठीक नही है। आपका मन खेलकूद मे लगता है, नाच गान मे लगता है, हास्य-विनोद मे लगता है और कनक कान्ता के संग क्रीडा करने में लगता है, तब भला इस मन को कही स्थिर करना तथा एकाग्र बनाना जितना कठिन नही है, उससे अत्यधिक कठिन उसे साधना है। अतः जैन-दर्शन का यह आघोष है कि मन को मारने की नही, बल्कि साधने की कला सीखनी है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

"एक साधक साधना के क्षेत्र मे उतर कर केशों का लोच करता है किन्तु जब तक राग-द्वेष से पूरित मन का मुडंन नही किया जायेगा तब तक यह केश मुंडन निरर्थक ही सिद्ध होगा। उसे मुंडने से कोई विशेष लाभ नही।"[१]

१—केशन कहा बिगरिया जो मुडे सो बार।
मन को क्यों नहीं मुंडिये जामे विषय विकार॥

कोई यह चाहे कि हमे घोडा मिले तो अच्छा, किन्तु वह चंचल प्रकृति का नही होना चाहिए। बताइए क्या कभी ऐसा सभव है ? नही। अगर आप ऐसा ही चाहते हैं तो उत्तर स्पष्ट है कि आपको असली घोडा नही, बल्कि नकली घोडा या शीतला का घोडा चाहिए। वास्तव मे अगर सजीव और अच्छी नस्ल का घोडा है तो उसमे अवश्य ही चंचलता होगी। इसी प्रकार जिसे मन मिला है तो वह अवश्य ही कुछ न कुछ चिन्तन करेगा। चिन्तन के अभाव में मन की कल्पना भी नही की जा सकती है।

मन किसे मिलता है ? क्या कभी एकेन्द्रिय जीवो के भी मन की प्राप्ति हो सकती है। नही, कभी नही। मन की प्राप्ति अनन्त पुण्योदय से सज्ञी पचेन्द्रिय को ही प्राप्त होती है। अन्य प्राणी तो मन रहित ही होते हैं। तब भला महान् पुण्योदय से मिले इस पवित्र मन को मारने की बात क्यो ?

लोग कहा करते हैं, क्या करे, हमारा मन ही नही लगता। किन्तु यह स्थिति भी ठीक नही है। आपका मन खेलकूद मे लगता है, नाच गान मे लगता है, हास्य-विनोद मे लगता है और कनक कान्ता के संग क्रीडा करने में लगता है, तब भला इस मन को कही स्थिर करना तथा एकाग्र बनाना जितना कठिन नही है, उससे अत्यधिक कठिन उसे साधना है। अतः जैन-दर्शन का यह आघोष है कि मन को मारने की नही, बल्कि साधने की कला सीखनी है। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

"एक साधक साधना के क्षेत्र मे उतर कर केशों का लोच करता है किन्तु जब तक राग-द्वेष से पूरित मन का मुडंन नही किया जायेगा तब तक यह केश मुंडन निरर्थक ही सिद्ध होगा। उसे मुंडने से कोई विशेष लाभ नही।"[1]

१—केशन कहा बिगरिया जो मुडे सो बार।
मन को क्यों नहीं मुंडिये जामे विषय विकार॥

बोली एक अमोल है, बोल सके तो बोल।
हिय तराजू तोलिके, फिर मुख बाहर खोल॥

और भी—

"चतुर नर वही है विश्व में कार्य करता।
प्रथम हृदय में जो सोचके बोलता है।
हृतमति नर पीछे सोचता किन्तु पूर्व स्वमुख।
बिना विचारे श्वान ज्यों खोलता है।"

वाणी एक अमूल्य चिंतामणि रत्न तुल्य है। उसका प्रयोग बहुत सावधानी पूर्वक करना चाहिए। पहले हृदय में तोलना फिर बोलना चाहिए। बिना बिचारे अनर्गल भाषा के प्रयोग से महान् अनिष्ट को सभावना रहती है। सब घाव भरे जा सकते हैं किन्तु वाणी की चोट मानव को हमेशा-हमेशा के लिए कचोटती रहती है। यह घाव सदा हरा ही रहता है। किसी कवि की एक स्वर-लहरी देखिए—

"पाटा पीड उपाव, तन लगा तखारिया।
बहे जीभरा घाव, रतीन ओषध राजिया।"

उर्दू के शायर की उक्ति भी कितनी समीचीन है—

"छुरी का तीर का तलवार का तो घाव भरा
किन्तु लबा जो जख्म जबा का, वह रहा हमेशा हरा।

वचन-वाण की चोट ला इलाज है। द्रौपदी के एक छोटे से वाक्य "अन्धों की सन्तान अन्धी होती है।" ने महाभारत सदृश एक भयकर युद्ध करवा डाला था। अतः अगर आपको वचन योग मिला है. "आप बोलना जानते हैं तो बहुत ही अच्छी सत्य और मधुर भाषा का प्रयोग करें, किन्तु मुह से गालियां की

बोली एक अमोल है, बोल सके तो बोल।
हिय तराजू तोलिके, फिर मुख बाहर खोल॥

और भी—

"चतुर नर वही है विश्व में कार्य करता।
प्रथम हृदय में जो सोचके बोलता है।
हतमति नर पीछे सीचता किन्तु पूर्व स्वमुख।
बिना विचारे श्वान ज्यों खोलता है।"

वाणी एक अमूल्य चिंतामणि रत्न तुल्य है। उसका प्रयोग बहुत सावधानी पूर्वक करना चाहिए। पहले हृदय में तोलना फिर बोलना चाहिए। बिना बिचारे अनर्गल भाषा के प्रयोग से महान् अनिष्ट को सभावना रहती है। सब घाव भरे जा सकते हैं किन्तु वाणी की चोट मानव को हमेशा-हमेशा के लिए कचोटती रहती है। यह घाव सदा हरा ही रहता है। किसी कवि की एक स्वर-लहरी देखिए—

"पाटा पीड उपाव, तन लगा तखारिया।
बहे जीभरा घाव, रतीन औषध राजिया।"

उर्दू के शायर की उक्ति भी कितनी समीचीन है—

"छुरी का तीर का तलवार का तो घाव भरा
किन्तु लबा जो जख्म जवा का, वह रहा हमेशा हरा।

वचन-वाण की चोट ला इलाज है। द्रौपदी के एक छोटे से वाक्य "अन्धों की सन्तान अन्धी होती है।" ने महाभारत सदृश एक भयकर युद्ध करवा डाला था। अतः अगर आपको वचन योग मिला है, "आप बोलना जानते हैं तो बहुत ही अच्छी सत्य और मधुर भाषा का प्रयोग करें, किन्तु मुह से गालियां की

"अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुर हसितं मधुरं।
हृदय मधुर गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं।
वचनं मधुर चरितं मधुरं वसन मधुरं बलितं मधुरं।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपते सरखिलं मधुरम्॥

इस सुन्दर श्लोक का तात्पर्य भी यही है कि हमारे व
माधुर्य रस से आप्लावित हों।

भाषा-सयम पर जैन आगमों में अत्यधिक बल दिया गया
वहाँ बताया है कि—

श्रावक जो मधुर बोलें।
कम बोलें।
कार्य होने पर बोलें।
कुशलता से बोलें।

उक्त सब बातें हमें भाषा-सयम की ओर ही संकेत करती
जो जितना ज्यादा वचन पर अकुंश रखेगा वह उतना ही अ
लोक-प्रिय होगा।

एक बार लोगों ने बांसुरी से पूछा—

'तुम श्री कृष्ण की इतनी प्यारी कैसे बनी हो। वे जि
प्यार 'राधा' से भी नहीं करते उतना तुम से।"

"मैं प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सरल हूँ। बोलाने प
बोलती हूँ और जब कभी भी बोलती हूँ बहुत मीठा बोलती हूँ।
श्रीकृष्ण मुझ पर अत्यधिक प्रसन्न हैं।" बांसुरी का प्रत्युत्तर था।

बांसुरी का यह उत्तर ध्वनित करता है कि वास्तव में
बोलना अपना महत्त्व घटाना नहीं, बल्कि बढ़ाना है। कई नि
मानव व्यर्थ की अनर्गल बातें किया करते हैं। कोई उन्हें पूछते
भी नहीं, फिर भी बकते रहते हैं। कवि ने कहा—

"तेल नहीं ताकला नहीं, काटती फिरे पूआ।
गिने नहीं माने नहीं, है लाडारी भूआ।

"अधरं मधुरं वदनं मधुरं नयनं मधुरं हसितं मधुरं।
हृदयं मधुरं गमनं मधुरं मधुराधिपतेरखिलं मधुरं।
वचनं मधुरं चरितं मधुरं वसनं मधुरं वलितं मधुरं।
चलितं मधुरं भ्रमितं मधुरं मधुराधिपते रखिलं मधुरम्॥"

इस सुन्दर श्लोक का तात्पर्य भी यही है कि हमारे वच माधुर्य रस से आप्लावित हों।

भाषा-सयम पर जैन आगमों में अत्यधिक बल दिया गया है वहाँ बताया है कि—

श्रावक जो मधुर बोलें।
कम बोलें।
कार्य होने पर बोलें।
कुशलता से बोलें।

उक्त सब बातें हमें भाषा-सयम की ओर ही संकेत करती हैं जो जितना ज्यादा वचन पर अकुंश रखेगा वह उतना ही अधि लोक-प्रिय होगा।

एक बार लोगों ने बांसुरी से पूछा—

"तुम श्री कृष्ण को इतनी प्यारी कैसे बनी हो। वे जित प्यार 'राधा' से भी नही करते उतना तुम से।"

"मैं प्रारम्भ से लेकर अन्त तक सरल हूँ। बोलाने पर बोलती हूँ और जब कभी भी बोलती हूँ बहुत मीठा बोलती हूँ। प श्रीकृष्ण मुझ पर अत्यधिक प्रसन्न हैं।" बांसुरी का प्रत्युत्तर था।

बांसुरी का यह उत्तर ध्वनित करता है कि वास्तव में ब बोलना अपना महत्व घटाना नहीं, बल्कि बढ़ाना है। कई निक मानव व्यर्थ की धनर्गल बातें किया करते हैं। कोई उन्हें पूछते भी नही, फिर भी बकते रहते हैं। कवि ने कहा—

"तेल नही ताकथा नही, काटती फिरे पूआ।
गिने नही माने नही, हैं लाड़ारी भूआ॥

कामोत्तेजक हो, क्रोधोत्पन्न करने वाला हो, भूलकर भी उसे स्वीकार न करें। क्योंकि नीति स्पष्ट कहती है कि—

"जैसा खावे अन्न, वैसा रहे मन।
जैसा पीवे पानी, वैसी रहे वाणी॥"

साधक के लिए हितकर, मित, प्रमाणयुक्त, भक्ष्य, सात्विक एवं पवित्र भोजन ही ग्राह्य है।

किन्तु आज हम खान पान के सयम को प्रायः भूल सा गये हैं। अस्पतालों मे जाकर निरीक्षण करेंगे तो हमें अत्यधिक मरीज जिह्वा के असयमी मिलेंगे। आज का मानव भक्ष्याभक्ष्य तथा पेयापेय से को परहेज कुछ नही करता। वह अंडे खाने में पाप नही मानता, शरा से घृणा नही करता, मास-मछली तो आज के अधिकाश मानव के दैनिक खुराक ही बनती जा रही है।

आज के मानव का पेट लेटर-बॉक्स बन गया है। सुबह से शाम तक मुँह की चक्की चलती ही रहती है। आहार विशुद्धता व कमी व अमर्यादित आहार सेवन व्याधियों के लिए खुला आमन्त्र है। कारण खान पान की निरकुशता पेट को विकृत करती है। पे की खराबी से—बुखार, जुखाम, सिरदर्द, पेट दर्द, गैस, चक्कर, पि और कै आदि विभिन्न प्रकार के रोगों का आक्रमण तन को आक्रा कर लेता है। सत्य है कि भूखे रहकर जितने लोग बीमार नही हो उनसे ज्यादा खाकर। तन की विकृति धीरे-धीरे मन को भी विकृ बनाती है। अतः आहार-शुद्धि हर दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

रसना के वशवर्ती साधु और श्रावक दोनों भोगियों की गण में गिने जा सकते हैं। कवि की भाषा में—

"भोगी इन्द्री तीन है घनरस फरस बखान।
तीन मे रस इन्द्री अधिक, जीतन दुष्कर जान।
जीतन दुष्कर जान, कही श्री वीर जिनेश्वर।
रस इन्द्री के काज दुःख को सहत विविध पर।

कामोत्तेजक हो, क्रोधोत्पन्न करने वाला हो, भूलकर भी उसे स्वीक न करें। क्योकि नीति स्पष्ट कहती है कि—

"जैसा खावे अन्न, वैसा रहे मन।
जैसा पीवे पानी, वैसी रहे वाणी॥"

साधक के लिए हितकर, मित, प्रमाणयुक्त, भक्ष्य, सात्वि एवं पवित्र भोजन ही ग्राह्य है।

किन्तु आज हम खान पान के सयम को प्रायः भूल सा गये हैं अस्पतालो मे जाकर निरीक्षण करेंगे तो हमें अत्यधिक मरीज जिह के असयमी मिलेगे। आज का मानव भक्ष्याभक्ष्य तथा पेयापेय से क परहेज कुछ नही करता। वह अंडे खाने में पाप नही मानता, शरा से घृणा नही करता, मास-मछली तो आज के अधिकाश मानव दैनिक खुराक ही बनती जा रही है।

आज के मानव का पेट लेटर-बॉक्स बन गया है। सुबह शाम तक मुँह की चक्की चलती ही रहती है। आहार विशुद्धता कमी व अमर्यादित आहार सेवन व्याधियों के लिए खुला आमन्त्र है। कारण खान पान की निरकुशता पेट को विकृत करती है। की खराबी से—बुखार, जुखाम, सिरदर्द, पेट दर्द, गैस, चक्कर, ि और कै आदि विभिन्न प्रकार के रोगों का आक्रमण तन को आक्रा कर लेता है। सत्य है कि भूखे रहकर जितने लोग बीमार नही ह उनसे ज्यादा खाकर। तन की विकृति धीरे-धीरे मन को भी वि बनाती है। अतः आहार-शुद्धि हर दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

रसना के वशवर्ती साधु और श्रावक दोनों भोगियों की गए में गिने जा सकते हैं। कवि की भाषा में—

"भोगी इन्द्री तीन है घनरस फरस बखान।
तीन मे रस इन्द्री अधिक, जीतन दुष्कर जान।
जीतन दुष्कर जान, कही श्री वीर जिनेश्वर।
रस इन्द्री के काज दुःख को सहत विविध पर।

मन से दूसरों की भलाई का चिन्तन करें। वाणी से भगवद् गुण स्तवन करें और तन से दीन-दुःखी, गरीब रोगी की सेवा मे रत रहे यतना से काम करे। इस प्रकार करने से ये तीन योग उच्छ्‌ख-लता पैदा नही करेगे और उद्दंडता के अभाव में अपना और जगत् का इष्ट साधन करने मे सफल सिद्ध होगे। अतः इन योगों पर हमेशा नियन्त्रण रखना अत्यावश्यक है।

इन तीनों के पश्चात् आती है आत्म विजय। आत्म विजय ही वस्तुत सच्ची विजय है। आत्म विजय करने वाला व्यक्ति ही सच्चा विजेता कहलाता है। ससार भले ही रावण को विराट पुरुष मानता हो, कस की धमकियो को ही सब कुछ समझता हो, नेपोलियन को ही महान् पुरुष स्वीकार करता हो किन्तु हमारे यहाँ तो सच्चा महावीर वही कहलाता है जिसने आत्म विजय किया है। तलवारो से हजारो का खून बहाने वाला वीर नही है किन्तु सच्चा वीर आत्म विजेता है।

शास्त्रकारों ने स्पष्ट बताया है—

"सयम और तप के द्वारा आत्मा का दमन ही श्रेयस्कर है किन्तु कथ और कथनो के माध्यम से दूसरो के द्वारा निग्रह करावाया जाना अच्छा नही है।"[१]

इस विषय में अग्रेजी के विद्वान का निम्न कथन भी द्रष्टव्य है—

'जो आत्म दमन नही करता, वह दूसरो के द्वारा वध और बन्धन आदि उपायो से दमन किया जाता है।"[२]

१—वरंमे अप्पादन्तो, सजमेण तवेण य
माह परेहि दम्मतो, बंधणेहि वहेहिव
(उ० अ० १ गा० १६)

२—The soul is in fact very difficult be subdued
दी सॉल इज इन फेक्ट वेरी डिफिकल्ट बी सब्डूड।

मन से दूसरों की भलाई का चिन्तन करें। वाणी से भगवद् गुण स्तवन करें और तन से दीन-दुःखी, गरीब रोगी की सेवा मे रत रहे यतना से काम करे। इस प्रकार करने से ये तीन योग उच्छृंखलता पैदा नही करेगे और उद्दंडता के अभाव में अपना और जगत् का इप्ट साधन करने मे सफल सिद्ध होगे। अतः इन योगों पर हमेशा नियन्त्रण रखना अत्यावश्यक है।

इन तीनों के पश्चात् आती है आत्म विजय। आत्म विजय ही वस्तुत सच्ची विजय है। आत्म विजय करने वाला व्यक्ति ही सच्चा विजेता कहलाता है। ससार भले ही रावण को विराट पुरुष मानता हो, कस की धमकियो को ही सब कुछ समझता हो, नेपोलियन को ही महान् पुरुष स्वीकार करता हो किन्तु हमारे यहाँ तो सच्चा महावीर वही कहलाता है जिसने आत्म विजय किया है। तलवारो से हजारो का खून बहाने वाला वीर नही है किन्तु सच्चा वीर आत्म विजेता है।

शास्त्रकारों ने स्पष्ट बताया है—

"सयम और तप के द्वारा आत्मा का दमन ही श्रेयस्कर है किन्तु कष्ट और कथनो के माध्यम से दूसरो के द्वारा निग्रह करावाया जाना अच्छा नही है।"[1]

इस विषय में अग्रेजी के विद्वान का निम्न कथन भी द्रष्टव्य है—

'जो आत्म दमन नही करता, वह दूसरो के द्वारा वध और बन्धन आदि उपायों मे दमन किया जाता है।"[2]

१—वरंमे अप्पादन्तो, सजमेण तवेण य
माह परेहिं दम्मनो, बंधरोहिं वहेहिव
(उ० अ० १ गा० १६)

२—The soul is in fact very difficult be subdued
दी सॉल इज इन फेक्ट वेरी डिफिकल्ट बी सब्डयूड।

सयम के महत्त्व को प्रकाशित करते हुए पूर्वधर आचार्य शंय्यभव ने मनक शिष्य को उपदेश देते हुए कहा—.

"अहिंसा संजमो तवो ।" (द० अ० १ गा० १)

अर्थात् अहिंसा सयम और तप उत्कृष्ट धर्म है ।

सयम के अभाव मे इस जीवात्मा को महान् कटु फल भोगने पडते हैं । यह प्रसंग इस निम्नोक्त उदाहरण से सुस्पष्ट है—

मारणान्तिक व्याधिग्रस्त किसी राजा को रोग से उन्मुक्त करने के उद्देश्य से एक सुयोग्य वैद्य ने आम्र फल सेवन न करने की युक्ति बताई ।

"तथास्तु ।" राजा का प्रत्युत्तर था । क्योंकि राजा को अपना जीवन प्रिय था और इस नियम के बिना जीवित रहने का कोई दूसरा विकल्प ही नही था ।

दिन व महिने गुजरते गये, किन्तु आम्रफल की तरफ राजा का ध्यान ही नही पहुंचा ।

अब तो राजा पूर्ण स्वस्थ एवं नीरोग था ।

"मन्त्रीवर । कहीं घूमने चलें । मन नहीं लगता है," राजा ने मंत्री से कहा ।

"चलिए सहर्ष चले ।" मन्त्री का विनम्र उत्तर था ।

अब तो दोनो निकल पडे । मनोविनोद करते किसी फल-फूलो स सुसज्जित वाटिका की तरफ से गुजरे ।

आम्रफल देखते ही राजा के मुँह में पानी भर आया ।

"मन्त्रीवर ! मैं आम खाऊँगा । अवश्य खाऊँगा ।"

नृपति का कथन था ।

'नहीं नरेन्द्र । मैं कभी नही खाने दूंगा । आम्रफल आपके लिए घातक है । निषिद्ध पदार्थ तो भयकर विष है । इस द्रव्य को खाकर मृत्यु को आमन्त्रित करना है ।

सयम के महत्त्व को प्रकाशित करते हुए पूर्वधर आचार्य शंय्यभव ने मनक शिष्य को उपदेश देते हुए कहा—.

"अहिंसा संजमो तवो ।" (द० अ० १ आ० १)

अर्थात् अहिंसा सयम और तप उत्कृष्ट धर्म है ।

सयम के अभाव मे इस जीवात्मा को महान् कटु फल भोगने पडते हैं । यह प्रसंग इस निम्नोक्त उदाहरण से सुस्पष्ट है—

मारणान्तिक व्याधिग्रस्त किसी राजा को रोग से उन्मुक्त करने के उद्देश्य से एक सुयोग्य वैद्य ने आम्र फल सेवन न करने की युक्ति बताई ।

"तथास्तु ।" राजा का प्रत्युत्तर था । क्योकि राजा को अपना जीवन प्रिय था और इस नियम के विना जीवित रहने का कोई दूसरा विकल्प ही नही था ।

दिन व महिने गुजरते गये, किन्तु आम्रफल की तरफ राजा का ध्यान ही नही पहुंचा ।

अब तो राजा पूर्ण स्वस्थ एवं नीरोग था ।

"मन्त्रीवर । कहीं घूमने चलें । मन नहीं लगता है," राजा ने मंत्री से कहा ।

"चलिऐ सहर्ष चले ।" मन्त्री का विनम्र उत्तर था ।

अब तो दोनो निकल पडे । मनोविनोद करते किसी फल-फूलों स सुसज्जित वाटिका की तरफ से गुजरे ।

आम्रफल देखते ही राजा के मुंह में पानी भर आया ।

"मन्त्रीवर ! मैं आम खाऊंगा । अवश्य खाऊंगा ।"

नृपति का कथन था ।

'नहीं नरेन्द्र । मैं कभी नही खाने दूंगा । आम्रफल आपके लि घातक है । निषिद्ध पदार्थ तो भयकर विष है । इस द्रव्य को खाक मृत्यु को आमन्त्रित करना है ।

अनिग्रहीत जीवन मृत्यु के सदृश है, स्निग्धता रहित तिल समान है। प्राण रहित शरीर के तुल्य है। नासिका के अभाव में मुँह के सदृश है और है पतवार विहीन नौका जैसा।

तो आएं, हम भी अपने जीवन को प्रशस्त बनाने हेतु इन्द्रिय मन तथा आत्मा का निग्रह कर अपने आपको कर्म बन्धनो से मुक्त कर सिद्धि के अधिकारी बनें।

अंत में कवि के शब्दों में—

'इन्द्रियो के घोड़े न विषयों में अड़ें,
जो अड़ें भी तो संयम के कोड़े पड़ें

तन के रथ को सुपथ पर चलाते चलें।
सिद्ध अर्हत मे मन रमाते चलें।

अनिग्रहीत जीवन मृत्यु के सदृश है, स्निग्धता रहित तिल समान है। प्राण रहित शरीर के तुल्य है। नासिका के अभाव में मुँह के सदृश है और है पतवार विहीन नौका जैसा।

तो आएं, हम भी अपने जीवन को प्रशस्त बनाने हेतु इन्द्रिय मन तथा आत्मा का निग्रह कर अपने आपको कर्म बन्धनों से मुक्त कर सिद्धि के अधिकारी बनें।

अंत में कवि के शब्दों में—

'इन्द्रियो के घोड़े न विषयों में अड़ें,
जो अड़ें भी तो संयम के कोड़े पड़ें

तन के रथ को सुपथ पर चलाते चलें।
सिद्ध अर्हंत मे मन रमाते चलें।

पर्वाधिराज का यह सातवाँ दिवस एक सदेश लाया है। मानव से भूल हो सकती है क्योकि वह छद्मस्थ है। भूल होना कोई खास चिंता का कारण नही, यदि हम भूल से सत् शिक्षा ग्रहण कर सके। आत्मा मे मलिनता आ सकती है, पर इस मालिन्य को मिटाकर आत्मशुद्धि की ओर हमे सतत सचेष्ट रहना चाहिये। यथा संभव साधक को दोषो से बचकर ही चलना है पर यदि कदाचित् प्रमादवश कुछ कलुषितता आ गई तो अविलम्ब यथोचित निन्दा गर्हा एव प्रायश्चित से अपनी आत्म शुद्धि कर लेनी चाहिये। पर्युषण के सातवें दिवस का यही उद्बोधन है।

पर्वाधिराज का यह सातवाँ दिवस एक सदेश लाया है। मानव से भूल हो सकती है क्योंकि वह छद्मस्थ है। भूल होना कोई खास चिंता का कारण नही, यदि हम भूल से सत् शिक्षा ग्रहण कर सकें। आत्मा मे मलिनता आ सकती है, पर इस मालिन्य को मिटाकर आत्मशुद्धि की ओर हमे सतत सचेष्ट रहना चाहिये। यथा संभव साधक को दोषो से बचकर ही चलना है पर यदि कदाचित् प्रमादवश कुछ कलुषितता आ गई तो अविलम्ब यथोचित निन्दा गर्हा एव प्रायश्चित से अपनी आत्म शुद्धि कर लेनी चाहिये। पर्युषण के सातवें दिवस का यही उद्बोधन है।

पर लगे हुए कर्म-मल को हटाने के लिये शुद्धि की महती आवश्यकता है '

साधक जब साधना के क्षेत्र में प्रवेश करता है तब उससे भूल होना स्वाभाविक है। भूल एकान्त पतन का रास्ता नहीं है, और भूल से घबराकर हमें भागने की भी आवश्यकता नही है। भूल से भी हमें सुन्दर प्रेरणा लेनी चाहिये। नीति वाक्य भी हमारे समक्ष है—

"सुर्खरू होता है इंसा, ठोकरे खाने के बाद ॥
रंग लाती है हीना, पत्थर पे घिस जाने के बाद ॥

मानव की हर भूल उसके लिये अभिशाप न होकर वरदान होती है अगर वह उससे कुछ सीख कर भविष्य में उससे बचने का सकल्प लेता है तो भूल हो जाना कोई भयकर पाप नही है किन्तु भूल को छिपाना एवं उसे किसी गीतार्थ गुरू के समक्ष प्रकट न करना बहुत ही भयकर पाप है। जो साधक गलती को छिपाने की कोशिश करता है वह साधना के पवित्र क्षेत्र मे कोसो दूर रहता है। प्रायः इस ससार में तीन प्रकार के प्राणी दृष्टिगत होते हैं।

'(१) सर्व प्रथम वे शुद्ध, बुद्ध, सर्वोच्च आत्मायें हैं, जो सर्व गुण सम्पन्न होने से कभी पतित ही नहीं होते वे' पुनीत श्रद्धेय आत्माएँ हमारी वंदनीय है।

(२) दूसरी श्रेणी मे वे व्यक्ति आते हैं, जो गिर गये पर सभलने का कोई प्रयास नही करते। वे तो पाप पक में डूबे रहते हैं, और उसी मे मस्त रहते हैं। ये प्राणी नगण्य हैं।

(३) और तीसरी कोटि मे वे व्यक्ति समाविष्ट होते हैं जिनके पाव उन्नति पथ से फिसल कर गहरे गर्त मे चले गये। पर क्या हुआ ? अपने उच्च स्वरूप को भूले नहीं। वे पतन से निराश नही होते हैं बल्कि द्विगुणित उत्साह व

पर लगे हुए कर्म-मल को हटाने के लिये शुद्धि की महती आवश्यकता है ·

साधक जब साधना के क्षेत्र में प्रवेश करता है तब उससे भूल होना स्वाभाविक है। भूल एकान्त पतन का रास्ता नहीं है, और भूल से घबराकर हमें भागने की भी आवश्यकता नही है। भूल से भी हमें सुन्दर प्रेरणा लेनी चाहिये। नीति वाक्य भी हमारे समक्ष है—

"सुर्खरू होता है इंसा, ठोकरे खाने के बाद ॥
रंग लाती है हीना, पत्थर पे घिस जाने के बाद ॥

मानव की हर भूल उसके लिये अभिशाप न होकर वरदा[illegible] होती है अगर वह उससे कुछ सीख कर भविष्य में उससे बचने क[illegible] सकल्प लेता है तो भूल हो जाना कोई भयकर पाप नही है किन्तु भूल क[illegible] छिपाना एवं उसे किसी गीतार्थ गुरू के समक्ष प्रकट न करना बहुत [illegible] भयकर पाप है। जो साधक गलती को छिपाने की कोशिश करता [illegible] वह साधना के पवित्र क्षेत्र मे कोसो दूर रहता है। प्रायः इस ससार [illegible] तीन प्रकार के प्राणी दृष्टिगत होते हैं।

'१) सर्व प्रथम वे शुद्ध, बुद्ध, सर्वोच्च आत्मायें हैं, जो स[illegible] गुण सम्पन्न होने से कभी पतित ही नही होते वे 'पुनी[illegible] श्रद्धेय आत्माएँ हमारी वंदनीय है।

(२) दूसरी श्रेणी मे वे व्यक्ति आते हैं, जो गिर गये प[illegible] सभलने का कोई प्रयास नही करते। वे तो पाप पंक [illegible] डूबे रहते हैं, और उसी मे मस्त रहते हैं। ये प्राण[illegible] नगण्य हैं।

(३) और तीसरी कोटि से वे व्यक्ति समाविष्ट होते हैं जिन[illegible] पाव उन्नति पथ से फिसल कर गहरे गर्त मे चले गये पर क्या हुआ? अपने उच्च स्वरूप को भूले नहीं। [illegible] पतन से निराश नही होते हैं बल्कि द्विगुणित उत्साह [illegible]

नही होता। अगर पहिले का बन्ध हुआ है तो उसकी भी निर्जरा होती है।[१]

हमें अपना हृदय हमेशा निष्कपट एवं छल रहित बनाना चाहिये क्यों कि शास्त्रकारों ने यह बताया है कि—"जिसका हृदय सरल होता है उसकी शुद्धि होती है और शुद्ध अन्तःकरण में धर्म टिकता है"[२] कारण सरलता में ही भगवान रहते हैं।

इसी प्रसग पर हमें राजा भोज के द्वारा विक्रम के स्वर्ण सिंहासनारूढ होते पुतली का कथन स्मृति पर आ जाता है—

अरे भोज! अगर इस सिंहासन पर आरूढ होता है तो अपना हृदय इतना शुद्ध बनाओ जितना कि एक बच्चे का होता है। बच्चे का हृदय वास्तव में सरल होता है। वे छल कपट से रहित, सत्य के देवदूत व अवधूत होते हैं। वे तो कह देते हैं कि बाबूजी ने कहलाया है कि बाबूजी बाहिर गये हैं।

"कालिमा से रहित शुद्ध श्वेत वस्त्र रंग को ठीक से पकड़ लेता है इसी प्रकार शुद्ध हृदय व्यक्ति भी धर्मोपदेश को सम्यक् प्रकार से ग्रहण कर लेता है।"[३]

आलोचना करने का वही व्यक्ति अधिकारी है, जिसका हृदय निश्छल है, दूसरा नहीं। हम पर के अवगुण को छोड़ आत्म आलो·

१—आलोयणाएण भन्ते। जीवे किं जणयइ आलोयणाएण माया नियाण मिच्छादंसण सल्लाण मोकस्स मग्ग विग्घाण अणन्त संसार बन्धणाणं उद्धरण करेइ, उज्जुभाव जणयइ उज्जुभाव पडिवन्नयण जीवे अमाई इत्थीवेय, नपुंसग वेय च न बन्धइ पुव्वबद्ध चणं निज्जरेइ।

(उ० अ० २९)

२—सो ही उज्जुय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई (उ० ३।१२)

३—सुद्धं वत्थं अपगत कालक सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्यं। सुत्त पिटक उदान की सूक्त ५।३

नही होता। अगर पहिले का बन्ध हुआ है तो उसकी भी निर्जरा होती है।[1]

हमें अपना हृदय हमेशा निष्कपट एवं छल रहित बनाना चाहिये क्यों कि शास्त्रकारों ने यह बताया है कि—"जिसका हृदय सरल होता है उसकी शुद्धि होती है और शुद्ध अन्तःकरण में धर्म टिकता है"[2] कारण सरलता में ही भगवान रहते हैं।

इसी प्रसग पर हमें राजा भोज के द्वारा विक्रम के स्वर्ण सिहासनारूढ होते पुतली का कथन स्मृति पर आ जाता है—

अरे भोज! अगर इस सिंहासन पर आरूढ होता है तो अपना हृदय इतना शुद्ध बनाओ जितना कि एक बच्चे का होता है। बच्चे का हृदय वास्तव में सरल होता है। वे छल कपट से रहित, सत्य के देवदूत व अवधूत होते हैं। वे तो कह देते हैं कि बाबूजी ने कहलाया है कि बाबूजी बाहिर गये हैं।

"कालिमा से रहित शुद्ध श्वेत वस्त्र रंग को ठीक से पकड़ लेता है इसी प्रकार शुद्ध हृदय व्यक्ति भी धर्मोपदेश को सम्यक् प्रकार से ग्रहण कर लेता है।"[3]

आलोचना करने का वही व्यक्ति अधिकारी है, जिसका हृदय निश्छल है, दूसरा नहीं। हम पर के अवगुण को छोड़ आत्म आलो-

१—आलोयणाएणं भन्ते। जीवे किं जणयइ आलोयणाएणं माया नियाण मिच्छादंसण सल्लाणं मोक्खस मग्ग विग्घाणं अणन्त संसार बन्धयाणं उद्धरणं करेइ, उज्जुभाव जणयइ उज्जुभाव पडिवन्नयए जीवे अमाई इत्थीवेय, नपुंसग वेय च न बन्धइ पुव्वबद्ध चणं निज्जरेइ।

(उ० अ० २६)

२—सो ही उज्जुय भूयस्स, धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ (उ० ३।१२)

३—सुद्धं वत्थं अपगत कालक सम्मदेव रजनं पटिग्गण्हेय्य। सुत्त पिटक उदान की मूलक ५।३

अनुभवियों ने बड़े पते की बात कही है अगर जीवन में सफल होना है तो दो बातों से बचो और दो बातें अवश्य करो। करणीय दो बातें हैं—

१. आत्म-आलोचना २. और पर प्रशंसा

दो निषिद्ध तत्त्व हैं—

१. स्व प्रशंसा और २. पर निन्दा ।।

एक बार सुई और छलनी के बीच संघर्ष छिड़ा। "तेरे सिर में छेद है" तमक कर छलनी ने सुई से कहा। मधुर मन्दस्मित हास्य के साथ छलनी का प्रत्युत्तर था—'बहिन जरा अपनी ओर तो निहार, तुम्हारा तो पूरा पूरा वदन ही छिद्रों से परिपूर्ण है।"

छलनी क्या कहती? वह तो शर्म से मरी जा रही थी। कहना न होगा आज भी विश्व मे अधिकाश प्राणी छलनी की ही स्थिति मे हैं।

"अन्तर्मुखी बनकर हम अपनी ओर निहारें तो हमे प्रतीत होगा कि वास्तव में अवगुण के पात्र हम ही है, दूसरे नही।"[1]

"जैसे ऊंट फल फूलों में मिठास एवं सुगन्ध के होते हुए भी काटो से प्रीति रखता है, उसी प्रकार पर आलोचक दुष्ट गुणीजनों में गुणो के रहने पर भी उनके दोषो को ही देखता है।[2]

जैसे कोयले खाने से काला मुंह होता है वैसे ही दूसरों की निंदा करने से जीवन अपवित्र एव काला होता है

"जो मनुष्य प्रत्यक्ष में स्तुति एवं परोक्ष मे दूसरो की निंदा

१—बुरा बुरा सब को कहे बुरा न दीसे कोय।
जो घर खोघूं आपणो तो मोसूं बुरो न कोय ।।

२—गुणिणा गुणेषु सत्स्वपि, पिशुन जनो दोष मात्र मादत्ते
पुष्पे फले विरागी, क्रमेलक: कण्टकौघमिव ।। (नीति)

अनुभवियों ने बड़े पते की बात कही है अगर जीवन में सफल होना है तो दो बातों से बचो और दो बातें अवश्य करो। करणीय दो बातें हैं—

१. आत्म-आलोचना २. और पर प्रशंसा

दो निषिद्ध तत्त्व हैं—

१. स्व प्रशंसा और २. पर निन्दा ।।

एक बार सुई और छलनी के बीच संघर्ष छिड़ा। "तेरे सिर में छेद है" तमक कर छलनी ने सुई से कहा। मधुर मन्दस्मित हास्य के साथ छलनी का प्रत्युत्तर था—"बहिन जरा अपनी ओर तो निहार, तुम्हारा तो पूरा पूरा वदन ही छिद्रों से परिपूर्ण है।"

छलनी क्या कहती ? वह तो शर्म से मरी जा रही थी। कहना न होगा आज भी विश्व मे अधिकाश प्राणी छलनी की ही स्थिति मे हैं।

"अन्तर्मुखी बनकर हम अपनी ओर निहारें तो हमे प्रतीत होगा कि वास्तव में अवगुण के पात्र हम ही है, दूसरे नही।"[1]

"जैसे ऊंट फल फूलों में मिठास एवं सुगन्ध के होते हुए भी काटो से प्रीति रखता है, उसी प्रकार पर आलोचक दुष्ट गुणीजनों में गुणो के रहने पर भी उनके दोषो को ही देखता है।[2]

जैसे कोयले खाने से काला मुंह होता है वैसे ही दूसरों की निंदा करने से जीवन अपवित्र एव काला होता है

"जो मनुष्य प्रत्यक्ष में स्तुति एवं परोक्ष मे दूसरो की निंदा

१—बुरा बुरा सब को कहे बुरा न दीसे कोय।
जो घर खोजूं आपणो तो मोमूं बुरो न कोय ॥

२—गुणिगण गुणेषु सत्स्वपि, पिशुन जनो दोष मात्र मादत्ते
पुष्पे फले विरागी, क्रमेलकः कण्टकौघमिव ॥ (नीति)

"दुर्गुणों को छोडो । दुर्गन्ध की तरफ ध्यान ही न दो। देखो इस कुत्तिया की दन्तावली मुक्ता सदृश समुज्ज्वल है ।

तो आइए श्री कृष्ण के इस उदाहरण से हम भी पर अवगुण को छोड, सद्गुण ग्रहण करना सीखें । निन्दा करते हैं तो अवश्य करें किन्तु किसकी ? अपनी ही ।

जिस प्रकार जल आदि द्रव्यो से मलिन वस्त्र की शुद्धि हो जाती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक साधना आलोचना के द्वारा अष्ट विध कर्म क्षय हो जाते हैं ।[1]

हमे अपने जीवन के दुर्गुणों को देखना चाहिए, दूसरो के दुर्गुण नही । अगर दूसरों के दुर्गुण देखना है तो उन्हे दूर करने की दृष्टि से । शास्त्रकारो ने बताया है—"दूसरो के जीवन की बुराई को दूर करने की दृष्टि से यदि आलोचना की जाय तो कोई दोष नही ।"[2]

एक समय कुछ लोग एक व्यभिचारिणी औरत को लेकर ईसा के समक्ष उपस्थित हो प्रार्थना करने लगे—भगवन् । इसे तो पत्थरो से मारना चाहिए । यही इसके लिए उपयुक्त दण्ड है ।

"ईसा कुछ क्षण गम्भीर मौन रहे फिर उनकी वाणी गुंजित हुई, इस पर पत्थर वही व्यक्ति मार सकेगा जिसने अपने जीवन में किसी प्रकार का दुराचरण नही किया हो ।

ईसा भी अपना सिर नीचे किये हुए विचारमग्न थे । कुछ देर पश्चात् जब उन्होने अपना सिर उठाकर देखा तो वहा किसी को भी न पाया । कहना न होगा कि सभी व्यक्तियो के मानस पटल पर

१—जह खलु मइल वत्थं, सुज्झई उदगाइएहिंदवेहि ।
एव भावुवहाणेण, सुज्झए कम्म मट्ठ विह ।
(आ० नि० आचा० मद्र०)

२—पहिपत्य निवारिन्तो, न दोपवनु मरिहसि उ० नि० धा० भद्र २८६

"दुर्गुणों को छोडो। दुर्गन्ध की तरफ ध्यान ही न दो। देखो इस कुत्तिया की दन्तावली मुक्ता सदृश समुज्ज्वल है।

तो आइए श्री कृष्ण के इस उदाहरण से हम भी पर अवगुण को छोड, सद्गुण ग्रहण करना सीखें। निन्दा करते हैं तो अवश्य करें किन्तु किसकी ? अपनी ही।

जिस-प्रकार जल आदि द्रव्यो से मलिन वस्त्र की शुद्धि हो जाती है, उसी प्रकार आध्यात्मिक साधना आलोचना के द्वारा अष्ट विध कर्म क्षय हो जाते हैं।[1]

हमे अपने जीवन के दुर्गुणों को देखना चाहिए, दूसरो के दुर्गुण नही। अगर दूसरों के दुर्गुण देखना है तो उन्हे दूर करने की दृष्टि से। शास्त्रकारो ने बताया है—"दूसरो के जीवन की बुराई को दूर करने की दृष्टि से यदि आलोचना की जाय तो कोई दोष नही।"[2]

एक समय कुछ लोग एक व्यभिचारिणी औरत को लेकर ईसा के समक्ष उपस्थित हो प्रार्थना करने लगे—भगवन्। इसे तो पत्थरो से मारना चाहिए। यही इसके लिए उपयुक्त दण्ड है।

"ईसा कुछ क्षण गम्भीर मौन रहे फिर उनकी वाणी गुंजित हुई, इस पर पत्थर वही व्यक्ति मार सकेगा जिसने अपने जीवन में किसी प्रकार का दुराचरण नही किया हो।

ईसा भी अपना सिर नीचे किये हुए विचारमग्न थे। कुछ देर पश्चात् जब उन्होने अपना सिर उठाकर देखा तो वहा किसी को भी न पाया। कहना न होगा कि सभी व्यक्तियो के मानस पटल पर

१—जह खलु मइल वत्थं, सुज्झई उदगाइएहिंदवेहिं।
एव भावुवहाणेण, सुज्झए कम्म मट्ठ विहं।
(भा० नि० आचा० भद्र०)

२—पहियत्थ निवारिन्तो, न दोषवतु परिहसि उ० नि० भा० भद्र १८६

एक बार राजा भोज ने अपने सभासदों से प्रश्न किया—

"सबसे तेज काटने वाला कौन है ?"

"सर्प ।"

"बिच्छू ।"

"मधुमक्षिका ।"

इस प्रकार विभिन्न तरह के उत्तर सभासदों से प्राप्त हुए पर कालिदास अभी तक चुप थे । राजा भोज ने कालीदास की तरफ दृष्टि करते हुए कहा—

"कविवर चुप क्यों ?"

कवि ने मौन भंग कर वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हुए कहा—

राजन् ! सबसे तेज काटने वाला तो निन्दक है जिसके दस से तन, मन, मस्तिष्क सब तिलमिलाने लगते हैं ।

सभी ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया ।

हमें अपने अन्तःकरण पर लगे हुए पापों की आलोचना एक बच्चे के सदृश बनकर करनी चाहिए क्योंकि शास्त्रकारों ने बताया है कि—

"छिपा हुआ पाप जगा रहता है, खलने पर वह अलग हट जाता है इस लिये छिपे पाप खोल दो आत्म-आलोचना के रूप में प्रकट करदो फिर वह लगा नही रहेगा ।"[१]

अपने समस्त दोषों को प्रकट करते समय हमारा अन्त करण एक बच्चे की तरह सरल निष्कपट चवं निश्छल होना चाहिए जिस प्रकार माता पिता के समक्ष एक बच्चा सरलता से अपने मनोभावों को प्रकाशित करता है, ठीक इसी प्रकार एक आलोचक अपने द्वारा कृत अपराधों को गुरु के समक्ष प्रकट कर अपने आपको निर्मल बनाता है । जैसा क 'रत्नाकर पच्चीस' में कहा है—

एक बार राजा भोज ने अपने सभासदों से प्रश्न किया—

"सबसे तेज काटने वाला कौन है ?"

"सर्प ।"

"बिच्छू ।"

"मधुमक्षिका ।"

इस प्रकार विभिन्न तरह के उत्तर सभासदों से प्राप्त हुए पर कालिदास अभी तक चुप थे । राजा भोज ने कालीदास की तरफ दृष्टि करते हुए कहा—

"कविवर चुप क्यों ?"

कवि ने मौन भंग कर वस्तुस्थिति स्पष्ट करते हुए कहा—

राजन् ! सबसे तेज काटने वाला तो निन्दक है जिसके दंश से तन, मन, मस्तिष्क सब तिलमिलाने लगते हैं ।

सभी ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया ।

हमें अपने अंत:करण पर लगे हुए पापों की आलोचना एक बच्चे के सदृश बनकर करनी चाहिए क्योंकि शास्त्रकारों ने बताया है कि—

"छिपा हुआ पाप जगा रहता है, खलने पर वह अलग हट जाता है इस लिये छिपे पाप खोल दो आत्म-आलोचना के रूप में प्रकट करदो फिर वह लगा नहीं रहेगा ।"[१]

अपने समस्त दोषों को प्रकट करते समय हमारा अन्त करण एक बच्चे की तरह सरल निष्कपट एवं निश्छल होना चाहिए जिस प्रकार माता पिता के समक्ष एक बच्चा सरलता से अपने मनोभावों को प्रकाशित करता है, ठीक इसी प्रकार एक आलोचक अपने द्वारा कृत अपराधों को गुरु के समक्ष प्रकट कर अपने आपको निर्मल

अतः छोटी सी गलती की भी शुद्धि तत्क्षण ही करना उपयुक्त है। एक पौराणिक प्रसंग है—

एक बार कहीं जाती हुई द्रौपदी ने कर्ण के अनन्य सौन्दर्य को देख मन मे संकल्प किया—

"पांडवों के संग होते तो ये भी मेरे पति होते।"

विशिष्ट ज्ञानी श्री कृष्ण ने इस बात को जाना और द्रौपदी को उचित शिक्षा देने हेतु बोले—

"देखो इस वन के पेड़ पौधों को कोई न सतावे। किन्तु फलों से लदे हुए आम्र वृक्ष को देख भीम के मुंह में पानी भर आया और उसने कृष्ण से आख चुराकर एक आम तोड ही लिया।

परन्तु, अतिशय ज्ञानी कृष्ण से यह रहस्य छिपा कैसे रह सकता था? उन्होने भीम को डांटते हुए कहा—

तुमने बडा अनर्थ किया। मैंने तुम्हें स्पष्ट शब्दों में रोक दिया था फिर तुमने कैसे इस फल को तोड़ा।" "अपराध मुक्ति की कौनसी प्रशस्त राह है, भीम का सविनय प्रश्न था।" "इस फल को पुनः पेड से चिपका दो, कृष्ण का प्रत्युत्तर था।" "क्या ऐसा भी कभी हो सकता है?"

क्यो नही, अवश्य हो सकता है अगर तुमने कोई अपराध नहीं किया हो तो।" "मेरा अपराध तो समक्ष ही है नटवर। यह कार्य मेरे से सभव नही। आप धर्मराज आदि से करवाइये।"

धर्मराज की तरफ दृष्टि घुमाते हुए श्री कृष्ण ने कहा—"इस फल को पेड से चिपका दो।"

"दीर्घकालीन जीवन में अगर मैंने किसी प्रकार का अपराध नहीं किया हो तो यह फल पुनः वृक्ष पर चढ जाये धर्मराज का कथन था।

अतः छोटी सी गलती की भी शुद्धि तत्क्षण ही करना उपयुक्त है। एक पौराणिक प्रसंग है—

एक बार कहीं जाती हुई द्रौपदी ने कर्ण के अनन्य सौन्दर्य को देख मन मे संकल्प किया—

"पांडवों के संग होते तो ये भी मेरे पति होते।"

विशिष्ट ज्ञानी श्री कृष्ण ने इस बात को जाना और द्रौपदी को उचित शिक्षा देने हेतु बोले—

"देखो इस वन के पेड़ पौधों को कोई न सतावे। किन्तु फलों से लदे हुए आम्र वृक्ष को देख भीम के मुंह में पानी भर आया और उसने कृष्ण से आख चुराकर एक आम तोड ही लिया।

परन्तु, अतिशय ज्ञानी कृष्ण से यह रहस्य छिपा कैसे रह सकता था? उन्होने भीम को डांटते हुए कहा—

तुमने बडा अनर्थ किया। मैंने तुम्हे स्पष्ट शब्दों में रोका था फिर तुमने कैसे इस फल को तोड़ा।" "अपराध मुक्ति की कौनसी प्रशस्त राह है, भीम का सविनय प्रश्न था।" "इस फल को पुनः पेड से चिपका दो, कृष्ण का प्रत्युत्तर था।" "क्या ऐसा भी कभी हो सकता है?"

क्यो नही, अवश्य हो सकता है अगर तुमने कोई अपराध नहीं किया हो तो।" "मेरा अपराध तो समक्ष ही है नटवर। यह कार्य मेरे से सभव नही। आप धर्मराज आदि से करवाइये।"

धर्मराज की तरफ दृष्टि घुमाते हुए श्री कृष्ण ने कहा—"इस फल को पेड से चिपका दो।"

"दीर्घकालीन जीवन में अगर मैंने किसी प्रकार का अपराध नहीं किया हो तो यह फल पुनः वृक्ष पर चढ जाये धर्मराज का कथन था।

"जिस प्रकार एक भारवाही भार उतार कर हल्कापन अनुभव करता है इसी प्रकार गुरु-समक्ष आलोचना प्रतिक्रमण कर साधक भी हल्कापन अनुभव करता है।"[१]

"प्रायश्चित का मतलब ही यही होता है कि" जिससे पापों का छेदन हो।[२]

मनुष्य अपनी ही भूलों मे संसार की विचित्र स्थिति में फंस जाता है, अगर हमसे कोई भूल हो जाय तो हमें चाहिये कि हम उसकी पुनरावृत्ति नही करें।

पापो का प्रक्षालन प्रायश्चित के गीले आंसुओ से सहज ही हो जाता है।

आत्मालोचना के प्रसग में महासती मृगावती जी का दृष्टान्त द्रष्टव्य है—

सायकाल के समय अपने स्थान पर शिष्या को देरी से आती देख, गुरुणी जी ने रुष्ट हो उपालम्भ के स्वर में कहा—

"सती मृगावती जी! यह आपने ठीक नहीं किया। यह कार्य हमारी श्रमणी संस्कृति के विरुद्ध है कि हम सूर्य डूबने के बाद तक श्रमणों के स्थान पर ठहर जायें। आप जैसी कुलीन गृहोत्पन्न सन्नारी भी अगर जिन शासन की मर्यादा का उल्लघन करेगी तो दूसरी साध्वियो से तो "भूल न हो" इसकी अपेक्षा कैसे की जा सकती है। देखो ध्यान रखो, भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति न हो।

"तथास्तु" विनम्र शब्दों में मृगावती जी ने अपनी भूल स्वीकार करते भविष्य मे गलतियों से बचने का नम्र विश्वास दिलाया।

१—उद्धरिय सव्वसल्लो, आलोइय निन्दिओ गुरु सगासे।
होइ अतिरेग लहुओ ओहरिय भरोव्व भार वहो।

२—पाव छिन्नति यस्मात् प्रायश्चितमिति भण्यते तस्मात्॥
"वीयं त न समायरे (द० ८३१)

"जिस प्रकार एक भारवाही भार उतार कर हल्कापन अनुभव करता है इसी प्रकार गुरु-समक्ष आलोचना प्रतिक्रमण कर साधक भी हल्कापन अनुभव करता है।"[1]

"प्रायश्चित का मतलब ही यही होता है कि" जिससे पापों का छेदन हो।[2]

मनुष्य अपनी ही भूलों से संसार की विचित्र स्थिति में फंस जाता है, अगर हमसे कोई भूल हो जाय तो हमें चाहिये कि हम उसकी पुनरावृत्ति नही करे।

पापो का प्रक्षालन प्रायश्चित के गीले आंसुओ से सहज ही हो जाता है।

आत्मालोचना के प्रसग में महासती मृगावती जी का दृष्टान्त दृष्टव्य है—

सायकाल के समय अपने स्थान पर शिष्या को देरी से आती देख, गुरुणी जी ने रुष्ट हो उपालम्भ के स्वर में कहा—

"सती मृगावती जी ! यह आपने ठीक नहीं किया। यह कार्य हमारी श्रमणी संस्कृति के विरुद्ध है कि हम सूर्य डूबने के बाद तक श्रमणों के स्थान पर ठहर जायें। आप जैसी कुलीन गृहोत्पन्न सन्नारी भी अगर जिन शासन की मर्यादा का उल्लघन करेगी तो दूसरी साध्वियो से तो "भूल न हो" इसकी अपेक्षा कैसे की जा सकती है। देखो ध्यान रखो, भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति न हो।

"तथास्तु" विनम्र शब्दों में मृगावती जी ने अपनी भूल स्वीकार करते भविष्य मे गलतियों से बचने का नम्र विश्वास दिलाया।

१—उद्धरिम सव्वसल्लो, आलोइय निन्दि ओ गुरु सगासे।
होइ अतिरेग लहुओ ओहरिय भरोव्व भार वहो।

२—पाप छिनत्ति यस्मात् प्रायश्चितमिति भण्यते तस्मात्॥
"वीयं त न समायरे (द० ८३१)

विस्मय विमुग्ध स्तम्भित चन्दनबाला को एक आघात सा लगा। वे सभली और दुख दर्द भरे शब्दों में कहा—

"मैंने ज्ञानी, विनीता, गुणसपन्ना की आसातना की है। इस प्रकार प्रायश्चित की आग मे गुरुणी ने भी अपने समस्त पापों को धो डाला। वे भी केवली बनी।

यहाँ कवि की यह वाणी कितनी खरी उतरती है—

"ज्यो सोना अग्नि में तपकर
निर्मल है हो जाता।
त्यों तप की अग्नि मे सारा,
कर्म मैल धुल जाता।"

इस प्रकार यह सुस्पष्ट है आत्मशुद्धि विकास की सीढी है, सुधार का राज मार्ग है। अत प्रत्येक साधक को इसका अवलम्बन लेकर अपना जीवन शुद्ध, स्वच्छ, रम्य और निरतिचार बनाना चाहिये। सस्कृत मे प्रतिदिन सोने के पहिले अपने दैनिक कार्यों की आलोचना करने का शुभ सदेश निम्न श्लोक मे बड़ा सुन्दर निखरा है—

"प्रत्यह प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ॥
कि नुमेपशुभिस्तुल्य, किं नु सत्पुरुषैरिति ॥

प्रतिदिन मनुष्य अपने आपको देखने का प्रयास करे। मैंने आज दिन भर मे कौनसा कर्म पशु सदृश तथा कौनसा आचरण सत् पुरुष सदृश किया है।

तो अवश्य हम भी इस आत्म-शुद्धि को पवित्र गंगा मे निमज्जित हो अपने आपको धन्य, कृत-कृत्य बनाएँ।

विस्मय विमुग्ध स्तम्भित चन्दनबाला को एक आघात सा लगा। वे सभली और दुख दर्द भरे शब्दों में कहा—

"मैंने ज्ञानी, विनीता, गुणसंपन्ना की आसातना की है। इस प्रकार प्रायश्चित की आग मे गुरुणी ने भी अपने समस्त पापों को धो डाला। वे भी केवली बनी।

यहां कवि की यह वाणी कितनी खरी उतरती है—

"ज्यो सोना अग्नि में तपकर
निर्मल है हो जाता।
त्यों तप की अग्नि मे सारा,
कर्म मैल धुल जाता।"

इस प्रकार यह सुस्पष्ट है आत्मशुद्धि विकास की सीढी है, सुधार का राज मार्ग है। अत प्रत्येक साधक को इसका अवलम्बन लेकर अपना जीवन शुद्ध, स्वच्छ, रम्य और निरतिचार बनाना चाहिये। सस्कृत मे प्रतिदिन सोने के पहिले अपने दैनिक कार्यों की आलोचना करने का शुभ सदेश निम्न श्लोक मे बड़ा सुन्दर निखरा है—

"प्रत्यह प्रत्यवेक्षेत नरश्चरितमात्मनः ॥
किं नुमेपशुभिस्तुल्य, किं नु सत्पुरुषैरिति ॥

प्रतिदिन मनुष्य अपने आपको देखने का प्रयास करे। मैंने आज दिन भर मे कौनसा कर्म पशु सदृश तथा कौनसा आचरण सत् पुरुष सदृश किया है।

तो अवश्य हम भी इस आत्म-शुद्धि को पवित्र गंगा मे निमज्जित हो अपने आपको धन्य, कृत-कृत्य बनाएँ।

"आत्मा के प्रबल दुश्मन ये कषाय ही हैं जो आत्म-गुणों का हनन कर रहे हैं। कषाय चतुष्क में प्रथम एवं प्रमुख हैं क्रोध/क्रोध को विद्वानों ने विष से उपमित किया है। यह विष मानव के भवों-भवों को नाश करने वाला है। इसकी प्रबलता के कारण ही आज समाज और राष्ट्र मे पग-पग पर अशान्ति व्याप्त है। इस क्रोध रिपु को क्षमा के अचूक अस्त्र से ही जीता जा सकता है। हमारे जीवन में शान्ति एवं क्षमा, प्रीति एवं उदारता की सुवास हो, यह सब कुछ समझते हुए पर्युषण पर्वाराधना आज अपनी अन्तिम छटा छोड़ती जा रही है।

"आत्मा के प्रबल दुश्मन ये कषाय ही हैं जो आत्म-गुणों का हनन कर रहे हैं। कषाय चतुष्क में प्रथम एवं प्रमुख हैं क्रोध/क्रोध को विद्वानों ने विष से उपमित किया है। यह विष मानव के भवों-भवों को नाश करने वाला है। इसकी प्रबलता के कारण ही आज समाज और राष्ट्र मे पग-पग पर अशान्ति व्याप्त है। इस क्रोध रिपु को क्षमा के अचूक अस्त्र से ही जीता जा सकता है। हमारे जीवन में शान्ति एवं क्षमा, प्रीति एवं उदारता की सुवास हो, यह सब कुछ समझते हुए पर्युषण पर्वाराधना आज अपनी अन्तिम छटा छोड़ती जा रही हैं।

ससार के महान् तत्त्व चिन्तकों ने प्रश्न किया कि—

"विस कि ?"

अर्थात विष क्या है ?"

तो उत्तर मिला—

"कोहो" अर्थात,क्रोध ।

"जैसे काली कम्बल पर दूसरा रंग नही चढ सकता, ठीक इसी प्रकार क्रोधी मनुष्य पर भी क्षमा आदि सद् गुणो का दूसरा सुन्दर रग चढ नही सकता ।"[१]

क्रोध एक प्रकार का विष है और यह तो स्पष्ट जानी मानी बात है कि जहर खाने से आदमी मरता है उसी प्रकार क्रोध रूप विष हमारे आत्मगुणो का घातक है ।

क्रोध एक प्रकार का बहुत भयकर विषधर है । क्रोधी मनुष्य मदिरा पीये हुए व्यक्ति की अपेक्षा भी अधिक खतरनाक सिद्ध होता है । क्रोध मानव को बे-भान बनाता है । क्रोध के आवेश मे वह व्याकुल हो उठता है । क्रोध तन को तपाता है, मन को तपाता है, रक्त को सुखाता है और आत्मा के भान को भुलाता है । नीति स्पष्ट कहती है कि—

"क्रोध से अभिभूत मानव सुख प्राप्त नही कर सकता ।"[२]

जब क्रोध का तीव्र वेग होता है तब वह स्व-पर का ख्याल ही भूल जाता है । इसीलिए तो शास्त्रकार ने कहा है—

"क्रोध प्रीति का नाश करता है ।"[३]

१—सूरदास खनकारी कामरी, चढै न दूजो रग ।

२—कोहाभिभूया ण सुहं लहन्ति ।।

३—को हो पीइं पणासेइ ।

(द० अ० ८ गा० ३८)

ससार के महान् तत्व चिन्तकों ने प्रश्न किया कि—

"विस कि ?"

अर्थात विष क्या है ?"

तो उत्तर मिला—

"कोहो" अर्थात,क्रोध ।

"जैसे काली कम्बल पर दूसरा रंग नही चढ सकता, ठीक इसी प्रकार क्रोधी मनुष्य पर भी क्षमा आदि सद् गुणो का दूसरा सुन्दर रग चढ नही सकता।"[1]

क्रोध एक प्रकार का विष है और यह तो स्पष्ट जानी मानी बात है कि जहर खाने से आदमी मरता है उसी प्रकार क्रोध रूप विष हमारे आत्मगुणों का घातक है ।

क्रोध एक प्रकार का बहुत भयकर विषधर है। क्रोधी मनुष्य मदिरा पीये हुए व्यक्ति की अपेक्षा भी अधिक खतरनाक सिद्ध होता है। क्रोध मानव को बे-भान बनाता है। क्रोध के आवेश मे वह व्याकुल हो उठता है। क्रोध तन को तपाता है, मन को तपाता है, रक्त को सुखाता है और आत्मा के भान को भुलाता है। नीति स्पष्ट कहती है कि—

"क्रोध से अभिभूत मानव सुख प्राप्त नही कर सकता।"[2]

जब क्रोध का तीव्र वेग होता है तब वह स्व-पर का ख्याल ही भूल जाता है। इसीलिए तो शास्त्रकार ने कहा है—

"क्रोध प्रीति का नाश करता है ।"[3]

१—सूरदास खलकारी कामरी, चढे न दूजो रग ।

२—कोहाभिभूया ण सुहं लहन्ति ।।

३—को हो पीइं पणासेइ ।

(द० अ० ८ गा० ३८)

क्रोधी मनुष्य केवलिःप्ररूपित धर्म शिक्षा का भी अधिकारी नही हो सकता है।

"क्रोध हमारे शरीर की आकृति बिगाड देता है। क्रोधी की आंखे लाल हो जाती हैं। मुँह का वर्ण काला हो जाता है। ललाट में त्रिवली हो आती है और हृदय एवं भुजाएँ फडकने लगती हैं। इस प्रकार क्रोध हमारे आकार-प्रकार को बीभत्स बना देता है।"[१]

क्रोधावेग मे हमारी प्रकृति आकृति की अपेक्षा भी अधिक भयंकर हो जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा बन जाता है। बिना विचारे अनर्गल जो भी मन मे आया, बकने लगता है।

"क्रोधी व्यक्ति आंखे बन्द कर देता है और मुँह खोल देता है।"[२]

क्रोध में मर्म प्रकाशित करने वाली तथा कलह उत्पन्न करने वाली भाषाओं का प्रयोग कर दिया जाता है। क्रोध के भयकर आवेश में समक्ष रहे हुए व्यक्ति पर डण्डे आदि का प्रहार भी कर दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि ऐसा प्राणी अधोगति से छूट नही सकता। उसे मरकर नरक निगोद की भयंकर दुःखद खाई मे गिरना पडता है।

क्रोधी मानव ईर्ष्या आदि कई, दुर्गुणों से भीतर ही भीतर स्वयं जलता रहता है और समक्ष रहे हुए व्यक्ति को भी दुःखी करता है क्रोधी को सर्वत्र अशान्ति ही मिलती है। इसीलिए किसी प्राचीन कवि ने कहा है—

क्रोधी कुड कुड़ कर मरे, जैसे अग्नि की झाल।"

१—क्रोधी महाचण्डाल, आख्या कर दे राती।
कोधी महाचण्डाल थर-थर धुजावे छाती।
क्रोधी महाचण्डाल थाली गिरी न कुण्डो।
क्रोधी महाचण्डाल जाय नरक मे उण्डो॥
—An a y n h h'

क्रोधी मनुष्य केवलिःप्ररूपित धर्म शिक्षा का भी अधिकारी नही हो सकता है।

"क्रोध हमारे शरीर की आकृति बिगाड देता है। क्रोधी की आंखे लाल हो जाती हैं। मुँह का वर्ण काला हो जाता है। ललाट में त्रिवली हो आती है और हृदय एवं भुजाएँ फडकने लगती हैं। इस प्रकार क्रोध हमारे आकार-प्रकार को बीभत्स बना देता है।"[१]

क्रोधावेग मे हमारी प्रकृति आकृति की अपेक्षा भी अधिक भयंकर हो जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा बन जाता है। बिना विचारे अमंगल जो भी मन मे आया, बकने लगता है।

"क्रोधी व्यक्ति आंखे बन्द कर देता है और मुँह खोल देता है।"[२]

क्रोध में मर्म प्रकाशित करने वाली तथा कलह उत्पन्न करने वाली भाषाओं का प्रयोग कर दिया जाता है। क्रोध के भयकर आवेश में समक्ष रहे हुए व्यक्ति पर डण्डे आदि का प्रहार भी कर दिया जाता है। परिणाम यह होता है कि ऐसा प्राणी अधोगति से छूट नही सकता। उसे मरकर नरक निगोद की भयंकर दुःखद खाई मे गिरना पडता है।

क्रोधी मानव ईर्ष्या आदि कई, दुर्गुणों से भीतर ही भीतर स्वयं जलता रहता है और समक्ष रहे हुए व्यक्ति को भी दुःखी करता है। क्रोधी को सर्वत्र अशान्ति ही मिलती है। इसीलिए किसी प्राचीन कवि ने कहा है—

क्रोधी कुड कुड़ कर मरे, जैसे अग्नि की झाल।"

१—क्रोधी महाचण्डाल, आख्या कर दे राती।
कोधी महाचण्डाल थर-थर धुजावे छाती।
क्रोधी महाचण्डाल थाली गिणे न कुण्डो।
क्रोधी महाचण्डाल जाय नरक मे उण्डो॥

—An angryman shuts his eyes and opens his mouth.

इस विषय में इन्द्र और लक्ष्मी के बीच घटित दृष्टान्त द्रष्टव्य है—

एक बार इन्द्र कहीं घूमने जा रहे थे। उन्हें रास्ते में बैठी लक्ष्मी दिखाई दी। उससे पूछा—

"लक्ष्मी आजकल तुम कहाँ रहती हो ?"

रोष प्रकट करती हुई लक्ष्मी ने कहा—

"मैं ऐसी भटकू नहीं, जो इधर-उधर भकटती फिरूं ? मैं त सदा एक ही जगह पर निवास करती हूँ।

बहुत प्रसन्नता की बात है, बताओ तुम हमेशा कहा रहतं हो। इन्द्र ने जिज्ञासा प्रकट की।

" गुरवो यत्र पूज्यन्ते, वाणी यत्र सुसंस्कृता ॥

अदन्त-कलहो यत्र, तत्र शुक्र ! वसाम्यह।

जहाँ पूजनीय पुरुषों का सम्मान होता है, जहाँ संस्कारवतं मधुरी वाणी का प्रयोग होता है और जहां आपसी वाक कलह नहं होता। हे शक्र ! मैं हमेशा वही रहती हूँ।

इसलिए हिन्दी के एक नीतिकार ने कहा—

जहाँ सुमति तहाँ सम्पत्ति नाना।

जैनागमों में क्रोध को ४ विभागों में विभक्त किया है। [1]अनन्तानुबन्धी [2]अप्रत्याख्यानी, [3]प्रत्यख्यानी [4] संज्वलन।

प्रथम प्रकार का क्रोध पर्वत की दरार के समान नही मिटने वाला जीवन पर्यन्त रहता है। उस क्रोध को करने वाला व्यक्ति सम्यक्त्व रूप सद्गुण का घात करता है और मरकर नरक गति का अधिकारी बनता है इसे अनन्तानुबन्धी कहा जाता है[1]

१—पव्वय राइसमाण कोहं मणुपविट्ठे जीवे काल करेइ णेरइ ए सु उववज्जति (स्था. ४।२)

इस विषय में इन्द्र और लक्ष्मी के बीच घटित दृष्टान्त द्रष्टव्य है—

एक बार इन्द्र कहीं घूमने जा रहे थे। उन्हें रास्ते में बैठी लक्ष्मी दिखाई दी। उससे पूछा—

"लक्ष्मी आजकल तुम कहाँ रहती हो ?"

रोष प्रकट करती हुई लक्ष्मी ने कहा—

"मैं ऐसी भटकू नहीं, जो इधर-उधर भकटती फिरूं ? मैं तो सदा एक ही जगह पर निवास करती हूँ।

बहुत प्रसन्नता की बात है, बताओ तुम हमेशा कहा रहती हो। इन्द्र ने जिज्ञासा प्रकट की।

" गुरवो यत्र पूज्यन्ते, वाणी यत्र सुसंस्कृता ॥

अदन्त-कलहो यत्र, तत्र शक्र ! वसाम्यह ।

जहाँ पूजनीय पुरुषों का सम्मान होता है, जहाँ संस्कारवती मधुरी वाणी का प्रयोग होता है और जहाँ आपसी वाक कलह नहीं होता। हे शक्र ! मैं हमेशा वही रहती हूँ।

इसलिए हिन्दी के एक नीतिकार ने कहा—

जहाँ सुमति तहाँ सम्पत्ति नाना।

जैनागमों में क्रोध को ४ विभागों में विभक्त किया है। [१]अनन्तानुबन्धी [२]अप्रत्याख्यानी, [३]प्रत्यख्यानी [४] संज्वलन।

प्रथम प्रकार का क्रोध पर्वत की दरार के समान नही मिटने वाला जीवन पर्यन्त रहता है। उस क्रोध को करने वाला व्यक्ति सम्यक्त्व रूप सद्गुण का घात करता है और मरकर नरक गति का अधिकारी बनता है इसे अनन्तानुबन्धी कहा जाता है[१]

१—पव्वय राइसमाण कोहं अणुपविट्ठे जीवे काल करेइ णेरइ ए सु उववज्जति (स्था. ४।२)

क्रोध शमन का एक मात्र उपाय है उपशम भाव। दूसरे शब्दों में क्षमा भाव।

"क्रोध का निग्रह करने से मानसिक दाह शान्त होता है।[1]"

जिस प्रकार रक्त रंजित वस्त्र का शुद्धिकरण रक्त से नही होता ठीक उसी प्रकार क्रोध का प्रतिकार क्रोध से नहीं, क्षमा से होता है।[1]

वैर से वैर बढता है, घटता नहा।

सस्कृत के विद्वानो ने भी कहा है—

नाहि वैरेण वैरं शाम्यति कदाचन।

नीति वाक्य भी है—

आवत गाली एक है, जावत होत अनेक।

जो गाली पलटे नही, तो रहे एक ही एक।

इस विषय मे महात्मा ईसा ने भी कहा है—

अपने शत्रुओ से प्यार करो, जो तुम्हे गलिया दे उन्हे आशीर्वाद दो।[2]

एक तरफ तो वह व्यक्ति है जो क्रोड पूर्व तक नानाविधतप कर्म स्वीकार कर विचरण करता है और दूसरी तरफ वह व्यक्ति है जिसके लिए एक समय भी भूखे रहना कठिन है किन्तु सामने वाले के द्वारा कही गई कडवी घू ट रूप बात को शान्ति से सहन कर लेता है। ज्ञानी जन इन दोनो की तुलना करते हुए क्षमा करने वाले के जीवन को अधिक प्रशस्त बतलाते हैं।

१—कोहमि उ निग्गाहिए, दाहस्सोवसमण हवइ तित्थ॥ (आ नि १०७४)

२—घृणा घृणा से वैर—वैर से कभी शान्त हो सकते क्या ?
कभी खून से सने वस्त्र को, खून ही से धो सकते क्या

३—Love your enimies

क्रोध शमन का एक मात्र उपाय है उपशम भाव। दूसरे शब्दों में क्षमा भाव।

"क्रोध का निग्रह करने से मानसिक दाह शान्त होता है।[1]"

जिस प्रकार रक्त रंजित वस्त्र का शुद्धिकरण रक्त से नहीं होता ठीक उसी प्रकार क्रोध का प्रतिकार क्रोध से नहीं, क्षमा से होता है।[2]

वैर से वैर बढ़ता है, घटता नहीं।

संस्कृत के विद्वानों ने भी कहा है—

नहि वैरेण वैरं शाम्यति कदाचन।

नीति वाक्य भी है—

आवत गाली एक है, जावत होत अनेक।

जो गाली पलटे नहीं, तो रहे एक ही एक।

इस विषय मे महात्मा ईसा ने भी कहा है—

अपने शत्रुओं से प्यार करो, जो तुम्हें गलियां दे उन्हें आशीर्वाद दो।[3]

एक तरफ तो वह व्यक्ति है जो क्रोड पूर्व तक नानाविधतप कर्म स्वीकार कर विचरण करता है और दूसरी तरफ वह व्यक्ति है जिसके लिए एक समय भी भूखे रहना कठिन है किन्तु सामने वाले के द्वारा कही गई कडवी घूंट रूप बात को शान्ति से सहन कर लेता है। ज्ञानी जन इन दोनों की तुलना करते हुए क्षमा करने वाले के जीवन को अधिक प्रशस्त बतलाते हैं।

१—कोहंमि उ निग्गहिए, दाहस्सोवसमणं हवइ तित्थ॥ (आ नि १०७४)

२—घृणा घृणा से वैर-वैर से कभी शान्त हो सकते क्या?
कभी खून से सने वस्त्र को, खून ही से धो सकते क्या

३—Love your enimies

शिष्य आनन्द जब अनार्य देश में धर्म प्रचारार्थ जाने लगे, तब बुद्ध ने पूछा—

"वहाँ जब तुम्हे कोई गालिया दगा तब तुम क्या करोगे।"

"मैं उन पर बिलकुल क्रोध नही करूंगा, मैं समझूंगा कि इन्होने मुझे लाठियो से तो नही मारा।"

"अगर लाठियों से प्रहार किया जावेगा तो।"

"सोचूंगा कि मुझे पत्थरों से तो नहीं मारा जा रहा है।"

"और यदि पत्थरों से प्रहार किया तो।"

"मैं समझूंगा कि जान से तो मुझे समाप्त नही किया है।"

"अगर जीवन से भी अलग कर दिया तब।"

"तब विचार करूंगा कि मैं अविनाशी हूँ और शरीर विनाशी है।" ये मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं ?

बौद्ध साहित्य का यह सुख्यात कथानक हमें क्षमा का महत्व बताता है।

स्वयं गौतम बुद्ध के जीवन की एक घटना इस प्रकार है—

किसी व्यक्ति ने बुद्ध को उत्तेजित करने हेतु गालिया दी खूब प्रलाप किया। पर बुद्ध तो अपने ध्यान मे मस्त थे। जब गाली देने वाला बोलते-बोलते थक गया तब शान्त स्वर से बुद्ध ने उससे पूछा—

एक बात बताओ—तुम्हारे द्वारा किसी प्रकार का बहुमूल्य उपहार किसी को भेंट किया जाये और वह व्यक्ति यदि उसे स्वीकार न करे तो वह पदार्थ किस का माना जायेगा ?"

"जिसका है उसीका रहेगा।" गालियां देने वाले का प्रत्युत्तर था।

तब महात्मा बुद्ध ने मुस्कराते हुए कहा :—

शिष्य आनन्द जब अनार्य देश में धर्म प्रचारार्थ जाने लगे, तब बुद्ध ने पूछा—

"वहाँ जब तुम्हे कोई गालिया दगा तब तुम क्या करोगे।"

"मैं उन पर बिलकुल क्रोध नही करूंगा, मैं समझूंगा कि इन्होने मुझे लाठियो से तो नही मारा।"

"अगर लाठियों से प्रहार किया जावेगा तो।"

"सोचूंगा कि मुझे पत्थरों से तो नहीं मारा जा रहा है।"

"और यदि पत्थरों से प्रहार किया तो।"

"मैं समझूंगा कि जान से तो मुझे समाप्त नही किया है।"

"अगर जीवन से भी अलग कर दिया तब।"

"तब विचार करूंगा कि मैं अविनाशी हूँ और शरीर विनाशी है।" ये मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं ?

बौद्ध साहित्य का यह सुख्यात कथानक हमें क्षमा का महत्व बताता है।

स्वयं गौतम बुद्ध के जीवन की एक घटना इस प्रकार है—

किसी व्यक्ति ने बुद्ध को उत्तेजित करने हेतु गालिया दी खूब प्रलाप किया। पर बुद्ध तो अपने ध्यान मे मस्त थे। जब गाली देने वाला बोलते-बोलते थक गया तब शान्त स्वर से बुद्ध ने उससे पूछा—

एक बात बताओ—तुम्हारे द्वारा किसी प्रकार का बहुमूल्य उपहार किसी को भेंट किया जाय और वह व्यक्ति यदि उसे स्वीकार न करे तो वह पदार्थ किस का माना जायेगा ?"

"जिसका है उसीका रहेगा।" गालियां देने वाले का प्रत्युत्तर था।

तब महात्मा बुद्ध ने मुस्कराते हुए कहा :—

"बुढिया कहां है ?"

'बुढ़िया बीमार है !" लोगों का प्रत्युत्तर था।

बस यह सुनना था कि मुहम्मद साहब का अन्तःकरण सहज करुणा की भावना से द्रवित हो उठा। वे भीतर गये। बुढ़िया को संभाला और दवा पथ्य की व्यवस्था करवाई।

बुढिया पर इस महान् क्षमावीर के जीवन का प्रभाव पड़े बिना न रहा। वह आजीवन के लिये मुहम्मद साहब की उपासिका बन गई।

× × ×

'अरे इसने मेरे भाई की हत्या की है।"

"उसने मेरे पिता के प्राण हरण किये हैं।"

"यही मेरे पुत्र का घातक है।"

"अरे इस दुष्ट ने मेरी माता का सहार किया है।"

"यह वही पापी है, जिसने मेरे पति को समाप्त किया है।"

इस तरह उन लोगों के द्वारा मुनि को विचित्र प्रकार की ताडना तर्जना दी जा रही है। गालियों और पत्थरों की बौछारें हो रही हैं, किन्तु मुनि समता की सरिता में निमज्जित थे। कल के दुष्ट आज शिष्ट व मिष्ट बन चुके थे। वे विप में अमृत सरसा रहे थे। उन्होंने दिखा दिया कि—

"जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा।"

कर्म का बध हसते-हंसते किया है तो इनका भुगतान रोते-रोते क्यों ? इस कर्म कर्ज को हंसते-हंसते चुकाना है।

छः महिने में कर्म बन्ध करने वाले पराक्रमी पुरुष ने छ ही महीने में शान्ति और क्षमा से मुख पर बिना किसी सलवट के अन्तःकरण के निर्मल भाव से कर्म शृंखला को तोड़कर शिवत्व प्राप्त कर लिया।

"बुढ़िया कहां है ?"

'बुढ़िया बीमार है ।" लोगों का प्रत्युत्तर था ।

बस यह सुनना था कि मुहम्मद साहब का अन्तःकरण सहज करुणा की भावना से द्रवित हो उठा । वे भीतर गये । बुढ़िया को संभाला और दवा पथ्य की व्यवस्था करवाई ।

बुढ़िया पर इस महान् क्षमावीर के जीवन का प्रभाव पड़े बिना न रहा । वह आजीवन के लिये मुहम्मद साहब की उपासिका बन गई ।

× × ×

"अरे इसने मेरे भाई की हत्या की है ।"

"उसने मेरे पिता के प्राण हरण किये हैं ।"

"यही मेरे पुत्र का घातक है ।"

"अरे इस दुष्ट ने मेरी माता का संहार किया है ।"

"यह वही पापी है, जिसने मेरे पति को समाप्त किया है ।"

इस तरह उन लोगो के द्वारा मुनि को विचित्र प्रकार की ताडना तर्जना दी जा रही है । गालियों और पत्थरो की, बौछारें हो रही हैं, किन्तु मुनि समता की सरिता मे निमज्जित थे । कल के दुष्ट आज शिष्ट व मिष्ट बन चुके थे । वे विष मे अमृत सरसा रहे थे । उन्होने दिखा दिया कि—

"जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा ।"

कर्म का बध हसते-हंसते किया है तो इनका भुगतान रोते-रोते क्यो ? इस कर्म कर्ज को हंसते-हंसते चुकाना है ।

छः महिने मे कर्म बन्ध करने वाले पराक्रमी पुरुष ने छ ही महीने मे शान्ति और क्षमा से मुख पर बिना किसी सलवट के अन्तःकरण के निर्मल भाव से कर्म शृंखला को तोड़कर शिवत्व प्राप्त कर लिया ।

एक क्षमा शील आत्मा, क्रोधी व्यक्ति को भी शान्त एवं प्रेमी का प्रतिरूप बनाने में समर्थ होती है। एक दृष्टान्त दृष्टव्य है।

जिस दिन एक श्रेष्ठी कन्या किसी सेठ की पुत्र वधू बनकर आई, ठीक उसी दिन उसके घर किसी झगड़ालू बुढ़िया के लड़ने की बारी थी।

सेठ घबरा उठा। सोचा गजब है, हम तो पहले ही इस झगड़ालू बुढ़िया से हैरान है। अगर यह नयी दुल्हिन भी इसे लड़ती देखकर झगड़ना सीख लेगी तो बहुत अनर्थ होगा।

इसी चिन्ता मे सेठ-सेठानी ने और घर अन्यान्य सदस्यों ने अड़ोस-पड़ोस वालों को भरसक समझाने का प्रयास किया कि आज की बारी आप ग्रहण करें और आपकी बारी पर हम निपट लेंगे।

पर अफसोस ! किसी ने इस कड़वी विष घूंट को पीना स्वीकार नही किया। कौन ऐसा मूर्ख होगा जो जलती भेड़ को घर में डाले।

किन्तु इस विलक्षण वधू को वहां की परिस्थिति समझने में थोड़ी भी देरी नही लगी। तीक्ष्ण बुद्धि से घर वालों को आश्वस्त करती हुई वह बोली—

"लड़ना तो मुझे भी खूब आता है।" बहू विनम्र शब्दों में, अपनी सास से बोली—

सशंकित स्वर से सास ने अपनी बहू से कहा—

"खाओ, पीओ और मौज करो अभी, तुम्हारे लड़ने झगड़ने के दिन नहीं हैं बहूरानी!"

किन्तु वह सुशील वधू कब मानने वाली थी। उसने तो आग्रह करके खील (खाद्य) और ठण्डा पानी मंगवा ही लिया।

आसन जमाकर उस बुढ़िया की प्रतीक्षा करने लगी।

एक क्षमा शील आत्मा, क्रोधी व्यक्ति को भी शान्त एवं प्रेमी का प्रतिरूप बनाने में समर्थ होती है। एक दृष्टान्त द्रष्टव्य है।

जिस दिन एक श्रेष्ठी कन्या किसी सेठ की पुत्र वधू बनकर आई, ठीक उसी दिन उसके घर किसी झगडालू बुढ़िया के लड़ने की बारी थी।

सेठ घबरा उठा। सोचा गजब है, हम तो पहले ही इस झगड़ालू बुढ़िया से हैरान हैं। अगर यह नयी दुल्हिन भी इसे लड़ती देखकर झगडना सीख लेगी तो बहुत अनर्थ होगा।

इसी चिन्ता मे सेठ-सेठानी ने और घर अन्यान्य सदस्यों ने अड़ोस-पड़ोस वालों को भरसक समझाने का प्रयास किया कि आज की बारी आप ग्रहण करें और आपकी बारी पर हम निपट लेंगे।

पर अफसोस! किसी ने इस कड़वी विष घूंट को पीना स्वीकार नहीं किया। कौन ऐसा मूर्ख होगा जो जलती भेड़ को घर में डाले।

किन्तु इस विलक्षण वधू को वहां की परिस्थिति समझने में थोड़ी भी देरी नहीं लगी। तीक्ष्ण बुद्धि से घर वालों को आश्वस्त करती हुई वह बोली—

"लड़ना तो मुझे भी खूब आता है।" बहू विनम्र शब्दों में अपनी सास से बोली—

सशंकित स्वर से हास के अपनी बहू से कहा—

"खाओ, पीओ और मौज करो अभी, तुम्हारे लड़ने झगड़ने के दिन नहीं हैं बहूरानी!"

किन्तु वह सुशील वधू कब मानने वाली थी। उसने तो आग्रह करके खील (खाद्य) और ठण्डा पानी मगवा ही लिया।

आसन जमाकर उस बुढिया की प्रतीक्षा करने लगी।

प्रभु ने फरमाया—

'हे गौतम ! क्रोध विजय मे क्षमा गुण की प्राप्ति होती है, क्रोधजन्य कर्मों का बन्ध नही होता है और पूर्वबद्ध कर्म क्षय हो जाते हैं ।"[१]

'धम्म पद' की सूक्ति मे कहा है —

"क्षमा से क्रोध को जीते ।"[२]

सन्त तुलसी दासजी ने भी कहा है—

"जब तक काम, क्रोध मद और लोभ की हृदय मे आग लगी हुई है तब तक पण्डित और मूर्ख मे कोई अन्तर नही है अर्थात् दोनो एक समान हैं ।"[३]

यह अनुभव सिद्ध सत्य है कि क्षमा मे शान्ति है और क्रोध मे अशान्ति । अत हमारा परम् कर्तव्य है कि—

"हम क्षमा, शान्ति, सद्भाव और स्नेहमयी पवित्र गगा को निर्मल धारा मे गहरी डुबकी लगाकर आत्मा पर लगे हुए सम्पूर्ण पापो को धो डालें ।"[४]

शास्त्रकारों ने स्पष्ट कहा है—

"क्षमा को परम धर्म समझ कर उसका आचरण करो ।"[५]

१—कोह विजएण भन्ते ? जीवे कि जणयइ ? कोह विजएण खति जणयइ, कोह वेयणिज्ज कम्म न बन्धइ, पुव्वबद्ध च निज्जरेइ ।

२ - अक्कोधेन जिने कोध

३—काम क्रोध मद लोभ की, जब लो मन मे खान
तब लौ पडित मूरखा, तुलसी एक समान ।

४—क्षमा शान्ति सद्भाव स्नेह की, गगा की निर्मल धारा ।
गहरी डुबकी लगा हृदय से, धो डालो कलिमल सारा ।

५—तितिक्ख परम नच्चा, भिक्खू धम्म समायरे ॥ सू० (१।८।२६।)

प्रभु ने फरमाया—

'हे गौतम ! क्रोध विजय से क्षमा गुण की प्राप्ति होती है, क्रोधजन्य कर्मों का बन्ध नहीं होता है और पूर्वबद्ध कर्म क्षय हो जाते हैं।"[१]

'धम्म पद' की सूक्ति मे कहा है—

"क्षमा से क्रोध को जीते।"[२]

सन्त तुलसी दासजी ने भी कहा है—

"जब तक काम, क्रोध मद और लोभ की हृदय मे आग लगी हुई है तब तक पण्डित और मूर्ख मे कोई अन्तर नहीं है अर्थात् दोनो एक समान हैं।"[३]

यह अनुभव सिद्ध सत्य है कि क्षमा मे शान्ति है और क्रोध मे अशान्ति। अत हमारा परम् कर्तव्य है कि—

"हम क्षमा, शान्ति, सद्भाव और स्नेहमयी पवित्र गगा की निर्मल धारा मे गहरी डुबकी लगाकर आत्मा पर लगे हुए सम्पूर्ण पापो को धो डालें।"[४]

शास्त्रकारों ने स्पष्ट कहा है—

"क्षमा को परम धर्म समझ कर उसका आचरण करो।"[५]

१—कोह विजएण भन्ते ? जीवे कि जणयइ ? कोह विजएण खंति जणयइ, कोह वेयणिज्ज कम्म न बन्धइ, पुव्वबद्ध च निज्जरेइ।

२—अक्कोधेन जिने कोध

३—काम क्रोध मद लोभ की, जब लो मन मे खान
तब लौं पडित मूरखा, तुलसी एक समान।

४—क्षमा शान्ति सद्भाव स्नेह की, गगा की निर्मल धारा।
गहरी डुबकी लगा हृदय से, धो डालो कलिमल सारा।

५—तितिक्ख परम नच्चा, भिक्खू धम्म समायरे॥ सू० (१।८।२६।)